गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

-- शोध निबन्ध --

हर्ष कालीन भारत की आर्थिक स्थिति

निर्देशक
डा0 काशमी सिंह भिन्डर 1/3/95
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति एवम् पुरातत्व विभाग

Pooja
प्रस्तुत कर्ता
कु0 पूजा शर्मा
एम0ए0 द्वितीय वर्ष

Th
९३ M
प्रस्त

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

-- शोध निबन्ध --

हर्ष कालीन भारत की आर्थिक स्थिति

Th९३M
शर्मा-ह

निर्देशक
डा०काशामी सिंहभिन्डर 11/3/95
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति एवम् पुरातत्व विभाग

Pooja
प्रस्तुत कर्ता
कु0 पूजा शर्मा
एम0ए0द्वितीय वर्ष

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0पूजा शर्मा ने अष्टम पत्र के विकल्प निबंध में हर्ष कालीन भारत की आर्थिक स्थिती पर मौलिक कार्य किया है ।

डा0काशमीर सिंह भिन्डर 11/3/95
निर्देशक

प्रस्तावना

हर्षयुगीन भारत की राजनीतिक घटना उतनी महत्वपूर्ण तो नही है, किन्तु इसकी आर्थिक व सांस्कृतिक उपलब्धियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है । हर्ष के शासनकाल में उत्तरी भारत के राजनीतिक पटल पर कुछ महत्वपूर्ण राजवंशों का अभ्युदय हुआ था । इन राजवंशों के शासकों का ध्यान मात्र युद्धों एवं राजनीतिक गतिविधियों तक ही सीमित नही था , बल्कि राज्य के सर्वांगीण विकास में भी था । जहां तक आर्थिक जीवन का प्रश्न है वर्तमान समय के सदृश हर्ष युग में भी कृषि का स्थान सर्वप्रधान था । इसके साथ ही अन्य उद्योग एवं व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में थे । कृषि तथा उद्योग के सदृश व्यापार भी अत्यन्त उन्नत दशा में था । व्यापार के नियत्रंण के लिए राज्य प्रशासन का भी एक अलग विभाग था, जो व्यापारियों के कार्यों की देखरेख करता था । इस काल में यातायात की सुविधा हेतु अनेक मार्गों का निर्माण किया गया था । इस युग में वस्तुओं तथा भूमि आदि को नापने के लिए माप प्रचलित थे । इस युग में कृषक, शिल्पी तथा व्यापारी गण विभिन्न संगठनों में संघटित थे ।

प्रस्तुत कार्य में सर्वप्रथम डा० काशमीर सिंह भिन्डर , अध्यक्ष-प्राचीन भारतीय इतिहास, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविधालय , हरिद्वार की मै हृदय से आभारी हूं जिन्होने अपने निर्देशन में प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की स्वीकृति प्रदान की । जिनके मौलिक सुझावों व स्नेह,आशीर्वाद से लघु शोध प्रबन्ध का कार्य पूर्ण हो सका ।

इसके अतिरिक्त विभागीय प्रो० डा० श्यामनारायण सिंह जी, डा० राकेश कुमार शर्मा जी का भी सहयोग के लिए आभार व्यक्त करते हुए उन सभी विद्वानों को मैं कृतज्ञ हूं जिनके

ग्रंथो के अध्ययनोंपरांत में निबंध प्रस्तुत करने में सफल हो सकी ।

प्रस्तुत कर्ता

Pooja

कु0पूजा शर्मा
एम0ए0 द्वितीय वर्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति एवम् पुरातत्व विभाग

विषयानुक्रमणिका

स्रोत सामग्री

भारतीय इतिहास में उत्तरी भारत के आर्थिक इतिहास (550ई0 से 650 ई0 तक) का अध्ययन विशेष महत्व रखता है । यह सुनिश्चित करना कठिन है कि किस समय राजवंशो का अभ्युदय का पतन हुआ था । लेकिन प्रायः सभी इतिहासकारों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि 550 ई0 ही गुप्तराजवंशों के पूर्ण पतन की तिथि है । गुप्तवंश के पतन के साथ ही अनेक छोटे-छोटे राज्य अपनी स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना में लिप्त हो गये ये स्वतंत्र राज्य अपनी प्रभुसत्ता के लिए संघर्षरत थे तभी 7 वी सदी में हर्ष वर्धन का उत्तरी भारत के राजनीतिक क्षितिज में प्रादुर्भाव हुआ था । हर्ष युग का प्राचीन भारतीय इतिहास में विशिष्ट स्थान है । इसने लगभग 50 वर्ष तक उत्तर भारत में एक सशक्त शासन व्यवस्था को स्थापना की थी । इस युग में हमें उस सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति की जानकारी मिलती है जिसे गुप्त युग में देखा गया था । इस युग के आर्थिक उत्थान के विषय में आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए प्रचुर मात्रा में अध्ययन सामग्री उपलब्ध है ।

इस विषय के अध्ययन स्त्रोतो का अभाव है और जो भी स्त्रोत उपलब्ध है वे भी यंत्र-तंत्र बिखरे पड़े है । इनमें पुरातात्विक सात्र्य यथा अभिलेख और मुद्रा सात्र्य अधिक महत्वपूर्ण है । इनके अतिरिक्त हर्षयुगीन साहित्यों से भी इस विषय पर विविध सामग्री उपलब्ध होती है । जिनकी प्रामाणिकता पुरातात्विक सात्र्यों से कुछ अंश तक संभव हो पाती है । विद्वानों का मानना है कि अभिलेख जो तिथियुक्त है वे हर्षयुगीन आर्थिक अवस्था की स्थिति का क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध कराने में पूर्णतया सक्षम है । इस युग के उपलब्ध सिक्कों का अपना विशेष महत्व है । सिक्को ने विशाल पैमाने पर होने वाली क्रय-विक्रय में अत्यधिक सहायता पहुचायी है और व्यापारिक कार्यो को विकसित एवं विस्तारित करने में उनका विशेष योगदान है ।

अमूल्य कलाकृतियों को भी आर्थिक इतिहास को प्रतिबिंबित करने में उपयोग किया जा सकता है । छठी एवं सातवी सदी ई0 के अंजन्ता चित्र कलाओं में तत्कालीन समाज की दिनचर्या और वेशभूषाओं का निरूपण

उद्धत है । ए०एल० बाशम के अनुसार"अजन्ता चित्र कला के अंकन का मूल उद्धेश्य धार्मिक था किन्तु इनसे समाज के विभिन्न पहलू की भी जानकारी मिलती है । ﴾1﴿ अजन्ता कलाकृतियों में समाज के साधारण वर्ग के लोगों की वेशभूषा रहन-सहन-को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है ।

इस काल में अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिक कृतियां उपलब्ध है । वाणरचित कादम्बरी में तत्कालीन समाज के विभिन्न रूपों कों दर्शाया गया है , जिससे उस युग की आर्थिक उन्नति की भी जानकारी मिलती है । ﴾2﴿हर्षवर्धन कृत "रत्नावली"नामानन्द से भी इस संदर्भ में विशेष लाभ मिलता है । ﴾3﴿ दण्डिन ने लिखा है कि तत्कालीन समाज में हिसां,जुआ,मदिरापान,व्याभिचार,धोखाधड़ी सामान्य गतिविधियों में से एक थे । ﴾4﴿ इसके अतिरिक्त मयूर और भृतहरि की रचनायें भी राज्य की समृद्धि और प्राचुर्य का संकेत देती है । कात्यायन तथा नारद स्मृति इसी काल के है । इनमें तत्कालीन आर्थिक जीवन के उपयोगी उल्लेख है ।

तकनीकी साहित्यों से भी प्रस्तुत अध्ययन को निरूपित किया जा सकता है । इस संदर्भ में वाराहमिहिर के ज्योतिषशास्त्र और ब्रह्माण्ड के अध्ययन तथा वाणभट्ट के अष्टांग संग्रह की जो तकनीकी रचना है विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

हर्ष युग में विदेशी यात्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये यात्रा वृतान्तों का प्रस्तुत अध्यय में महत्व है । कास्मस द्वारा रचित "दि क्रिश्चियन टोपोग्राफी" से भारत वर्ष की कई सदी ई० में अन्तराष्ट्रीय व्यापार में भूमिका की जानकारी मिलती है ।

चीनी यात्री ह्युनसांग जिसने भारत की यात्रा 629 ई० से 645 ई० तक की थी । ह्युनसांग की यात्रा वृतान्त बहुत महत्व पूर्ण है । उसकी भारत यात्रा का मुख्य उद्धेश्य यहां से बोद्धधर्म सम्बन्धी पाण्डुलिपियों का अध्ययन करना तथा बुद्ध के जन्म-स्थल की यात्रा करना ही था । उसने कश्मीर,सौराष्ट्र,कामरूप,मालकोट आदि की यात्रा की थी । उसने बौद्धधर्म के गूढ़तत्वो का विस्तृत अध्ययन किया

उसका सम्पर्क कन्नौज के प्रतापी राजा हर्षवर्धन तथा कामरूप नरेश भास्कर वर्मन से था । उसने अपनी भारत यात्रा में अनुभव किया उसका विवरण सी-यू-की मे संकलित किया था । ह्युनसांग के यात्रा वृतान्त में भारतीय लोगों की श्रेत्र के आधार पर विविधता तथा कृषको द्वारा उपजाए गये अन्न तथा विधियों में भो श्रेत्रो के आधार पर विविधता दृष्टिगोचर होती थी । उसने तत्कालीन राजस्व व्यवस्था का भी निरूपण किया है ।

इत्सिंग जिसने भारत की यात्रा ह्युनसांग के पश्चात अर्थात 673 ई0 में की थी इसके यात्रा वृतान्तों से ह्युनसांग द्वारा प्रस्तुत वृतांत की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है । उसने शिक्षा और जाति व्यवस्था को ही अधिक उल्लेख किया है । इत्सिंग के अनुसार 7वी सदी ई0 तक वैश्य जाति का विदेशी व्यापार पर पूर्ण एकाधिकार स्थापित हो चुका था ।

इस काल की आर्थिक अवस्था की पुर्नरचना में सहायक स्त्रोतों यथा पुरातात्विक अभिलेख और सिक्के साहित्य तथा विदेशी वृतांत की सहायता ली गयी है ।

(1) ए0एल0बाशाम,द वंडर देह वाज इंडिया,पृ0 68 ।
(2) काले,कादम्बरी, पृ0 20 ।
(3) के0पी0पवि, रत्नावली ।
(4) एस0एन0दासगुप्त और एस0के0डे, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ0 213 ।
(5) इत्सिंग,ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन पृ0 105 ।

कृषि एवं कर व्यवस्था

भूमि एवं उसकी जुताई प्राचीन भारत में मुख्य व्यवसाय था । वैदिक सूक्तो में कृषि सम्बन्धी अत्यन्त रोचक विवरण मिलते है । ऋग्वेद में कहा गया है "हले लगाओ जुऐ जोतो" अब जब कि गर्भ तैयार है, उसमें बीज बोओं एवं हमलोगों की प्रार्थना से प्रचुर फसल हो परिपक्व (अनाज) हांसिये की ओर झुके (1),

प्राचीन भारत में कृषि इतना महत्वपूर्ण था कि बंजर भूमि को पुर्नजीवित कर उपयोग में लाने की समस्या गम्भीरता से महसूस की गई । कौटिल्य के समय कृषि का महत्वपूर्ण स्थान था । उनके अनुसार राज्य के द्वारा एक कृषि अधीक्षक नियुक्त किया जाना चाहिए, जिसे कृषि विज्ञान का ज्ञान हो, जिससे अनेक प्रकार के अनाज, फल, फूल, सब्जी, कन्द तन्तु पैदा करने वाले वृक्ष एवं कपास के बीजों को संग्रहित किया जा सके । (2)

यह दृष्टव्य है कि वात्स्यायन जो मुख्यत: शहरी परिष्कृत संस्कृति का वर्णन करता है, वह भी कृषि के महत्व से परिचित था। स्थापत्य कला का वर्णन करते हुये वह फूल के पौधे, फल एवं सब्जियों के लिए वाटिका हेतु खुले जगह की बात करता है एवं वह भी कहता है । कि गृहस्तामिनी पर पाकशाला-उद्यान में सब्जी उगाने का दायित्व रहना चाहिए (3)

सातवी शताब्दी में भारत आये चीनी यात्री ह्युनसांगजिसने भारत के लगभग हर मुख्य श्रेत्र की यात्रा की, उसने पाया की भारत की उर्वर भूमि प्रचुर फसल देती है । मथुरा में कृषि मुख्य व्यवसाय था । तक्षशिला एवं सिंहपुर की भूमि उर्वर थी । इसी प्रकार कौशाम्बी श्री-वस्ती, कामरूप, वाराणसी आदि में कृषि द्वारा प्रचुर फसल होती थी । सूरत की भूमि खारी होने के कारण वंहा फलो एवं फूलों की कमी थी एवं मालवा के निकट अ-तली के निवासी भूमि खारी होने के कारण किसान होने के बजाय मुख्यत: व्यापारी थे । (4) सुस्पष्ट है कि उत्-तरी भारत के गंगाघाटी की बछारी मिट्टी भारतीय कृषि के समुन्नत होने का एक बड़ा कारण था । इसलिये गंगाघाटी उत्तरी भारत का

आर्थिक स्नायु-केन्द्र एवं सम्पूर्ण का भी केन्द्र था ।[5] समसामयिक अभिलेख भी उद्घाटित करते है कि भूमि के टुकड़े अक्सर दान में दिये जाते थे, जिससे कृषि को प्रोत्साहन मिले या उचित देखभाल द्वारा भूमि के उत्पादन में वृद्धि हो । नि:सन्देह भूमि दान का उद्देश्य वंजर भूमि की जोताई कराना था । कात्यायन ने इस सन्दर्भ में वंजर जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये सटीक सुझाव दिये है । उसके अनुसार "जब भूमि का स्वामी असमर्थ हो तथा कोई अनजान व्यक्ति किसी अन्य के द्वारा बिना किसी विरोध के उसकी जुताई करता है, तब वह [अनजान व्यक्ति] भूमि के उत्पादन का अधिकारी है ।[6]

फसलो की रक्षा के लिये विभिन्न उपाय अपनाये जाते थे । फसलो को जानवरों से बचाने के लिये कृष्ट क्षेत्र को ठीक से घेरा जाता था । कृषि पद्धति में प्राचीन परम्परा का ही पालन करते थे । कृषि में प्राचीन भारतीयों द्वारा प्रयुक्त औजारों का ही प्रयोग हो रहा था ,एवं उसमें कोई विशेष उन्नति नही हुयी थी । वाण ने विन्ध्यावासियों के बारे में चर्चा करते हुये उल्लेख किया है कि वहां मुख्यत: कुदाल संस्कृति थी, वे अपने परिवार के पालन-पोषण के लिये चिन्तित रहते थे । किसान,लोहार व बढ़ई के सहयोग के बिना कार्य शुरू नही कर सकते थे । कृषि के लिये हल सबसे आवश्यक औजार था । कृषि औजारो के अबिलम्ब प्राप्ति एवं मरम्मत के लिए लौहार खेती के निकट ही रहते थे । कुदाल मिट्टी को हल्का करने में तथा फाबड़ा उसे पलटने के प्रयोग में आता था । वाण ने अनाज के संग्रह के लिए प्रयुक्त होता था । अन्न भंडार की चर्चा की है । अन्न संग्रह के बाद शेष भाग चारा के रूप में प्रयुक्त होता था । भूमि की उत्पादन क्षमता बडाने के लिए खाद का प्रयोग आवश्यक था, एवं वैदिक काल से इसका प्रयोग सर्वज्ञात था । वृक्षारोपण के सन्दर्भ में वाराहमिहिर ने बताया है कि मुलायम मिट्टी सभी प्रकार के वृक्षो के लिए अनुकुल थी, जबकि लगाने के पहले तिल के पौधे लगा कर पुष्पण कर उनको रौंद दिया जाय । मतस्य पुराण

वृक्षारोपण को आनुष्ठानिक महत्व देता है । इस अवसर पर ब्राह्मणों को वस्त्र एवं उबटन द्वारा पूजना चाहिए । वृक्षो को जड़ी-बूटी से धोकर चावल -चूर्ण माला ,गहनों एवं काजल से सजाकर अधिवास अनुष्ठान कर,इन्द्र एवं अन्य देवताओं को यज्ञ द्वारा आह्वान करना चाहिए । ‌{7} इससे विदित होता है कि भारतीय वृक्षारोपण महत्व एवं लाभ से भली-भांति परिचित थे ।

भारतीय लोगों के भरण-पोषण का मुख्य आधार कृषि अन्य व्यवसायों की तरह बहुत व्यापक अनुभव कौशल एवं कठिन परिश्रम चाहता था । वृहस्पति ने कृषकों को चारागाह से घिरा शहर के या राजमार्ग के निकट,वंजर भूमि एवं चूहो से ग्रस्त,भूमि को जोतने में परहेज करने की चेतावनी दी है । उनके अनुसार समान पशुधन व्यक्ति, बीज एवं पशुपालन के औजार वाले समझदार व्यक्तियों के साथ सम्मिलित खेती करनी चाहिए ।ताकि समृद्धि एवं विपत्ति में सम्मिलित कृषि के सदस्यगण बराबर के भागी हो तथा व्यक्तिगत त्रुटियों को समूह द्वारा पूरा किया जा सके । कृषि में समय-समय पर नौकर नियुक्त किये जाते थे । जिन्हें उपज का दंसवा भाग दिया जाता था ।

इत्सिंग द्वारा बौद्ध संघ के द्वारा कृषि की चर्चा दर्शनीय है । ह्युनसांग ने सातवी शताब्दी में अपने यात्रा के दौरान भारतीय कृषि के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की है । अपनी भारत यात्रा के समय उसने चावल,गेहूं,अदरक,सरसों खरबूजा कद्दू उपजते देखा ।लहसून व प्याज का प्रयोग बहुत कम होता था । भारतीय कृषि एवं उपज के सन्दर्भ में इन विदेशी एवं अन्य स्त्रोतो से पूरा किया जा सकता है । चावल भारत में व्यापक रूप से उगाया जाता था । चम्पा, कौशाम्बी,जलन्धर चावल उपजाने वाले श्रेत्र थे । चावल के बाद गेहू भारत मे ज्यादा उगाया जाता था । जो अधिकांश तय उत्तरी भारत में होता था । जौ भी एक महत्वपूर्ण अनाज था । भारतीय कृषि में दलहन व तिलहन का प्रयोग अनेक व्यंजनों में उपयोग करते थे । दलहन में मूंग, मसूर,मटर इत्यादि थे । तेलहन में तिल,सरसो आदि प्रमुख थे, जिनका प्रयोग मुख्यत: दीप जलाने व घायलावस्था में औषध के रूप में प्रयोग किया जाता था । शक्कर के

लिए ईख का उत्पादन होता था ।

भारत मसालों के निर्यातकर्ता के रूप में विश्व प्रसिद्ध है । भारत में इलायची, धनिया, अदरख, हींग, हल्दी, मिर्च आदि मसाले उपजाये जाते है । ऐसा माना जाता है कि मसाला उपजाने में दक्षिण भारत उत्तर भारत से आगे था । ऐसा माना जाता है कि पान पूर्वी भारत में उपजाया जाता था पान में डालनें के सुगन्धित पदार्थ सुपारी ,कत्था लौंग, जायफल तथा कपूर भी उपजाया जाता था ।

भारत की भूमि में अनेक प्रकार के फल होते थे, ह्युनसांग ने आम, केला, नारियल, वेर, अजीर, इमली आदि फलो की चर्चा की है ।कश्मीर में नाशपाती, आड़ू, खूबानी आदि फल होते थे ।

उत्तम कृषि एवं प्रचुर वनस्पतियां तथा हरियाली के लिये सिचाई की भूमिका महत्वपूर्ण थी । भारत जैसा कृषि प्रधान देश पूर्णतः वर्षा पर निर्भर नही रह सकता था । अत: ऐसे में कृत्रिम सिचाई के साधन आवश्यक थे । कौटिल्य के अनुसार राजा को जलाशय बनाना या बनाने के लिये उत्साहित करना चाहिए ।(8) सिंचाई के लिये कुओं एवं सरोवर के अलावा नहर भी प्रचलित साधन थे । हालाकि भारतीय सिचाई के विभिन्न साधन द्वारा भूमि के उर्वरता से पैदावार बढ़ाकर प्रचुर अनाज पैदा करने वाले थे परन्तु कृषि अक्सर प्राकृतिक विपदाओ जैसे अतिवृष्टि, बाढ़ व महामारी एवं अन्य विपदाओं से ग्रस्त रहता था ।

भारतीय प्राचीन काल से ही पुष्प प्रेमी रहे है जो उनके दैनिक जीवन में हर अवसर के लिए आवश्यक था । ह्युनसांग के अनुसार भारतीय घरों के फर्श मौसमी फूलों से सजे रहते थे । वाण ने लिखा है कि "राजकुमारी कादम्बरी ने एक मालिन को अपने आभूषण उपहार में दिये जब उसने कादम्बरी द्वारा लगाये गये पौधो के पुष्पण की प्रथम सूचना दी" (9)वाटिका में उगाये गये फूल एवं लताओं में अशोक, चम्पक, वकुल, केतकी, कुन्द आदि थे ।

वन अनेक प्रकार के वृक्षों एवं पशु-पक्षियों का भंडार था । जहां से अनेक उद्योगों एवं कलाओं कों कच्चा माल प्राप्त होता था । कौटिल्य ने वन सम्पदाओं को राजकीय को प्रकाशित करने वाले

रत्नों के बराबर माना है । ﴾10﴿ सातवी शताब्दी उत्तरी भारत के अनेक श्रेत्र में रहते थे । विन्ध्य श्रेत्र में घने जगंल थे जिनमें हिरण, हाथी, शेर आदि जानवरों का निवास था । जगलों में अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते थे जिनका आर्थिक महत्व था । जगलों में चीड़, शाल देवदार इत्यादि के घने श्रेत्र थे । देवदार वृक्ष देवमूर्तियां बनाने के लिये अच्छा माना जाता था । चीड़ का राल अन्य पदार्थों के साथ जल को सुगन्धित करने के काम में आता था ।

कृषि के सहयोग के लिये पशुओं को पालतू बनाना आवश्यक था । जानवरों में घोड़े, हाथी बहुत ही उपयोगी होते थे, जो युद्ध अभियान अन्य सामारिक कार्य एवं आवागमन के लिए आवश्यक थे । हाथी दांत कीमती माना जाता था । गौ को आर्थिक महत्व देकर उसे कृषि के आर्थिक पहलू से सुरक्षित बना दिया गया ।

यह स्पष्ट है कि हमारे इस अध्याय में मुख्य बल दिये गये सर्वेक्षण काल में कृषि की दशा एवं उसके विभिन्न अवयवों से था । इसके अलावा सर्वेक्षण काल में वन सम्पदा, पशु सम्पदा का भी समाज के आर्थिक जीवन में बहुत महत्व था । यही नही विभिन्न प्रकार की वाटिकाये एवं आनन्द स्थल का सामाजिक जीवन में महत्व था, खास कर शहरो में इस प्रकार हमारें सर्वेक्षण काल में कृषि और उसके सहायक कार्यो में वृद्धि हुई एवं समाज कें आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

कर- व्यवस्था-

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था के उद्‌भव काल में किसी न किसी रूप में वित्त व्यवस्था अवश्य ही रही होगी क्योंकि प्रशासन में वित्त व्यवस्था के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती है । राजा को अपनी प्रजा की सम्पत्ति पर तथा विजित शत्रुओं की सम्पत्ति पर असीम अधिकार प्राप्त था । भली-भाती भरा हुआ कोष शासन के अस्तित्व एवं बल का आधार होता था । करारोपण का अधिकार राज्य को स्वत: प्राप्त होता है, किन्तु प्राचीन भारत के चिन्तको के अनुसार यह अधिकार शर्तहीन नही है । निष्ठुर और अन्यायी प्रशासन के दुष्ट ग्रहो से प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म था । वास्तव में करारोपण अपने मूल उद्देश्य से कभी विचलित नही हुआ ।

राज-कोष राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग था और प्राचीन भारत के अर्थ शास्त्रियों ने राज्य के वित्तीय पहलू को बहुत अधिक महत्व दिया । पूर्व वैदिक काल में राजस्व के तीन मुख्य स्त्रोत होते थे -धनी पुरूषों द्वारा स्वेच्छया उपहत भाग, विजित कबीलों से वसूली गई बलि और शुल्क शब्दों के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि वैदिक युगीन लोग करारोपण के सिद्धान्तों से परिचित थे । ज्यो-ज्यों राज्य की शक्ति का विकास होता गया त्यो-त्यों करों का बहुगुणन होता गया और वित्त के महत्व का अनुभव होने लगा ।स्मृतियों बौद्ध साहित्य रामायण ,अर्थशास्त्र समकालीन साहित्य वृतान्तों से हमें यह आभास मिलता है कि पूर्व काल में राजस्व प्रणाली और लोक वित्त प्रणाली किस प्रकार चलती थी ।

कामन्दक के अनुसार किसी राज्य की समृद्धि के आठ मूल आधार है,-कृषि ,व्यापारिक मार्ग, केन्द्र में सुरक्षा की सुदृढ़ सैन्य व्यवस्था, नदियों पर बाधो का निर्माण हाथियों के रहने की व्यवस्था (कुजरबन्धनम्) वन्य सम्पदा खनन स्थल को विकसित करना इत्यादि ।

करारोपण के सिद्धान्त -

महाभारत के शांतिपर्व में आये प्रसंगों से यह प्रकट होता है कि राज्य अपने कोष की पूर्ति के लिए वार्त्ता के क्षेत्र में किस तरह विविध

प्रकार के कार्य कलाप चलते थे । ऋग्वेद में आय के स्थायी स्त्रोतो का निर्देश है, किन्तु कालक्रमेण कर ग्रहण करने की पद्धति विकसित हुयी राज्य के प्रत्यक्ष राजस्व के अतिरिक्त कई गौण आय स्रोतो से भी राजकोष भरा जाता था । करों को बहुविविधता की अवधारणा कौटिल्य मनु और महाभारत में मिलती है । कर प्रशासन सेवा के बदले राजा को मिलने वाली राशि पारिश्रमिक समझा जाता था ।

कौटिल्य और मनु दोनो का सुझाव है कि राजा को उचित कर उगाहना चाहिए और करारोपण करने में कुछ सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए ।राजा का उपमा माली से की गयी है । उसे कर बटोरने के लिए गलत ढ़ग नही लागु करने चाहिए । राजा को मधुमक्खी की कला अपनानी चाहिए जो मधुसंचय करते हुये वृक्ष को कोई पीड़ा नही पहुचाती । उसे सम्पत्ति के संग्रह और वितरण में सूर्य और इन्द्र दोनो होना चाहिए । करारोपण ऐसा होना चाहिए कि प्रजा को उसका भार मालूम न पड़ें करारोपण धीरे-धीरे कोमलता पूर्वक और उचित समय में किया जाना चाहिए । वाणिज्य वस्तुओ पर कर सभी बातो पर समुचित विचार करके स्थायी रूप से निर्धारित करना चाहिए कर इस तरह न हो कि आर्थिक स्त्रोतो ही पगु हो जायें । शासन व्यवस्था के व्यय में अधिक से अधिक किफायत की जाय, ताकि राज्य अपना कोष बड़ा सके । करारोपण विचार-विमर्श करके किया जाता था । कर सन्तुलित और सुविधानुसार बहुरूपी होना चाहिए ।

अलबरूनी ने कहा है कि भारत के लोग राजा को अपनी आय का छठा हिस्सा इसलिए चुकाते थे कि राजा प्रजा को उसकी सम्पत्ति की और सत्तानों की रक्षा करता था । कर राजा द्वारा की गई प्रजा की सेवा के प्रतिफल में दिया जाता था । महाभारत मनु, कौटिल्य आदि ने इस बात की पुष्टि की है कि राजा रक्षा के प्रतिफल में कहा गया है कि जो राजा रक्षा न कर सके, उसे टूटी हुयी नाव के सदृश त्याग देना चाहिए राजा को वार्षिक राजस्व-सग्रहण योग्य और विश्वासपात्र व्यक्तियों से करानी चाहिए कर राजा की मजदूरी है ।

आपस्तम्ब ने विधान किया है कि राजा केवल न्याय संगत कर

वसूले न्याय कर वे है जो परम्परा द्वारा और स्मृतियों द्वारा स्वीकृत है । अन्याय कर की निन्दा की गयी है । राजा को सलाह दी गयी है कि वे धर्मत: शासन करे तत्कालीन राजवंशों के अनेक लेखों में प्राय:"अचारमटप्रावेश्यं" सामाजिक पद मिलता है जिसका "चार" पद और बाकाटकों के लेखों में "हात शब्द समान ही प्रतीत होते है । प्राण नाथ के अनुसार "चार" का अभिप्राय "चर" से ही, जिसका उल्लेख अर्थशास्त्र में गुप्तचर या पुलिस के अर्थ में हुआ है ।॥।।॥अमर कोष में "मट" और "सैन्य" पर्यायवाची शब्द के रूप मे प्रयुक्त हुए है । लेकिन भूमिदान पत्रों में इनके अनेकोउद्धरणा का उल्लेख का अर्थ यह भी हो सकता है कि या तो ग्राम के निकट सैनिकों के रूकने या निकट से गुजरने पर ग्रामवासियों को उन्हे नकद या वस्तुएं देनी पड़ती थी या ये लोग राजस्व संग्रह करने से सम्बद्ध थे । दोनों ही स्थिति में वे लोग अपने लाभ के लिए सम्भवत: कष्टदायक अतिरिक्त अवैध कर वसूला करते थे ।

"चाटो" तथा भटो को निष्ठुरता तथा लालच ही सम्भवत: उन लोगों के प्रति हीसामान्यजनों में घृणा की भावना थी । वाण ने लिखा है कि "चाट" तथा"भट" अपनी निष्ठुरता तथा लालच के कारण जनसाधारण द्वारा घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे । एक उद्धरण में वाण ने उन्हे कृषि भूमि से पर्याप्त अन्न लेकर कुलीनों के भृत्यों तथा दासों के साथ हंस-हंस कर वार्तालाप करते हुए दिखलाया है और दूसरे स्थान पर वह लिखते है कि निर्धन लोग उनकी कठोरता तथा दुर्व्यवहार से कराहते थे ।

अत: जहां तक सिद्धान्त का प्रश्न है हमारे स्त्रोत ग्रन्थो मे वर्णित कराधान के सिद्धान्त पर्याप्त ठोस प्रतीत होते है तथा जिस काल में इनका प्रतिपादन हुआ उस काल पर विचार करने पर ये वित्तीय चिन्तक की अत्यधिक विकसित अवस्था का अधिक परिचय कराते है । किन्तु इससे यह अनुमान नही लगाया जा सकता है कि उपर्युक्त नियम सभी दृष्टान्तों में कठोरता से लागू किये जाते थे ।

कर ग्रहण के स्रोत -

प्राचीन भारत में राजस्व का मुख्य स्रोत भूमि रहा है । स्मृतियों ,रामायण और महाभारत में अन्न में राजा के अंश को बलि कहा गया है न कि भाग और कौटिल्य तथा कालिदास के अनुसार संन्यासियों को भी अपने संचय में से षष्ठांश चुकाना है । अशोक के रूविमनिदेई स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि लुम्बिनी में आपवादिक रूप में भूरास्व की दर षष्ठांश से घटा कर दशमांश कर दी गई थी । गौतम ने उत्तम,मध्यम,और अधम भूमि पर क्रमश षष्ठांश,अष्टमांश और दशमांश राजस्व का विधान किया है । कौटिल्य ने आपात काल में तृतीयाशं और चतुर्थाश की भी अनुशंसा की है । दर में मिट्टी उर्वरता और सिचाई सुविधा कें अनुसार अन्तर किया जाता था ।

"बलि" वैदिक काल में पराजित शत्रुओं से वसूली जाती थी धीरे-धीरे यह कर्षको से वसूले गये लगान में से राजकीय अंशदान के रूप में परिणत हो गई ।पूर्वकाल में बलि ऐच्छिक वस्तु थी , किन्तु बाद में इसका स्वरूप बदल गया और यह नकद देय हो गई । अशोक ने लुम्बिनी से पूर्णत: कर (बलि) को मुक्त कर दिया । मनु और गौतम इसका प्रयोग करो के सामान्य अर्थ में करते है जबकि स्मृतियों में इस भाग का समानार्थक माना गया है और कहीं-कहीं यह कर का पर्यायवाची भी माना गया है हांलाकि भाग,बलि और कर ये तीनों भिन्न अर्थवाले शब्द है । बलि को उत्पीड़क कर भी माना गया है ।

प्राचीन भारत में भूराजस्व राज्य के कर व्यवस्था का प्रमुख स्रोत था । मनु के अनुसार राजा को अपने प्रजा से भूमि को उर्वरता कें आधार पर उपज का 1/6, 1/8, या 1/12 वां भाग लेना चाहिए । नारद के अनुसार राजस्व का 1/6 भाग राजा को परम्परागत ढंग से प्राप्त होता था जो उसके द्वारा अपनी प्रजा के सुरक्षा के बदले में प्राप्त था । कौटिल्य के अनुसार वित्तीय संकट के काल

में भूमि को उर्वरता के अनुसार राजा उपज का एक तिहाई या एक चौथाई भाग मांग सकता है । धर्मादित्य के फरिदपुर दानपत्र के अनुसार भू-दान के पुण्य का 1/6 भाग राजा के चरणों पर समर्पित है । फाह्यान एवं ह्युनसांग ने उपज का 1/6 भाग को राज्य का अधिकार बताया है ।उपरोक्त तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि गुप्त काल तथा हर्षयुगीन भारत में मानक भू-राजस्व उपज का 1/6 भाग था ।

तत्कालीन अभिलेख हमें राज्य को देय भू-राजस्व एवं करो के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी नही देते । अधिकांश अभिलेख दानपत्र है जो राजा सांमतों द्वारा ग्रामों या भूमि के दान का उल्लेख करते है । उदारहरणार्थ मधुवन दान लेख के अनुसार हर्ष ने दो ब्राह्मणों को उदरंग सहित सोमकुण्डल ग्राम तथा उससे प्राप्त आय जो कर मुक्त थे । दान में दिया था । ध्रुवसेन द्वितीय द्वारा बौद्ध भिक्षु संघ को दान में एक गांव देते हुये उसे उद्रंग ,उपरिक, हिरण्य इत्यादि करो से मुक्त होने का उल्लेख किया है । इसमें राजकीय पदाधिकारी भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे ।

राजवित्तीय शब्द के रूप में "कर"शब्द का प्रयोग पूर्ववर्ती साहित्यों में प्राय: नही उपलब्ध होता है । मनु के एक श्लोक में अनेक टीकाकारों ने इसका अर्थ अनेक प्रकार से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । मेधातिथि के अनुसार"कर" का अर्थ द्रव्य का दान तथा सर्वज्ञनारायण के अनुसार "कर"भूमि पर एक निश्चित स्वर्ण भुगतान है । टीकाकारों के अनुसार "कर" एक उत्पीड़न शुल्क था और यह सामान्य भूमिकर से भिन्न तथा इसके अतिरिक्त था । कुछ अन्य लेखों में "कर " भूराजस्व(भाग) तथा भोग को छोड़कर सभी प्रकार किया गया है । पी0सी0चक्रवर्ती के अनुसार "कर" एक सम्पात्ति कर था जो राज्य के द्वारा समय-समय पर लोगों पर लागू किया जाता था उपर्युक्तउद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि "कर" कोई नियमित राजस्व का स्रोत नही था अपितु यह विशेष परिस्थितियों में आरोपित किया जाता था ।

भूराजस्व के उपर्युक्त पदों के सदृश हिरण्य भी अधिकाशतं: पूर्वकालीन भारतीय स्रोत में ही उपलब्ध होता है । कौटिल्य के अनु-सार मनु को अपना राजा स्वीकार कर लेने के उपरांत सभी लोगों ने राजा को उसके अंश के रूप में उपज का छठा भाग और व्यापारिक वस्तुओं का दंसवा भाग तथा"हिरण्य" देने का वचन दिया था ।यदपि पंतजलि ने मत व्यक्त किया है कि "हिरण्य राजा को धनवान बनाता है, परन्तु वह न तो इस शब्द का प्रयोग किसी विशेष भूमि कर के अर्थ में करते है और न तो उसके भुगतान को कोई निश्चित दर ही निर्धारित करते है ।

उपर्युक्त संदंभो में "हिरण्य" शब्द की व्याख्या विभिन्न विद्धानों द्वारा भिन्न -भिन्न ढ़ग से की गयी है । अर्थशास्त्र में व्यवहृत इस शब्द का अनुवाद स्वंर्ण किया गया है । स्मृति ग्रन्थों में हिरण्य प्राय: पशु {पालतू जानवर} के साथ प्रयुक्त हुआ है और यह उसी संदर्भ में राजस्व के मान्य स्रोत के रूप में परिलिलित होता है जिसमें कृषि उपज, वृक्ष, फूल-फूल इत्यादि उल्लिखित है । घोषाल ने सही बतलाया है कि"हिरण्य" शब्द के अर्थ निर्णय का संकेत पर-वर्णी काल में प्रचलित भू-राजस्व की कुछ शर्तों से प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ मध्यकाल में टोडरमल के सुधार के पूर्व तक, भू-राजस्व का भुगतान वस्तु रूप में किया जाता था । 592 ई0 के एक लेख में वर्णित है कि निश्चित श्रेत में ईख की खेती पर "कर " की दर 32 रजत मुद्रा थी लेकिन यदि वह भूमि किसी धार्मिक संस्थान की हो तो उसे अढाई रजत मुद्रा ही देनी होती थी ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य राजवित्तीय शब्द "उपरिक" "उदृग" मिलते है जो गुप्त काल तथा उसके परवर्ती काल के लेखों में ही मिलते है । फलीट के अनुसार "उपरिक" शब्द "उपरि" या"उप्ति से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है वैसे कृषक से उदगृहीत कर जिन्हे भूमि पर सामाजिक अधिकार नही था ।

बर्नेट के अनुसार "उपरिक" तकमल " मेलवरम" अर्थात उपज में राज्य के अंश सदृश अधिकार वाली कोई बात है । एक लेख में उपरिक उद्रंग तथा महायोगकर का एक साथ उल्लेख मिलता है । चूकिं"उपरि" का अर्थ संस्कृत हिन्दी और बंगला में अतिरिक्त होता है ।इसलिए "उपरिक" की व्याख्या अतिरिक्त कर के रूप में की गयी है । किन्तु उपर्युक्त व्याख्या भी इसके अभिप्राय: को स्पष्ट करने में असक्षम है ।

उद्रंग शब्द को भी परिभाषित करना उतना ही अधिक कठिन है । यह शब्द भी"उपरिक" के सदृश मात्र भूमिदान पत्रो में नही । फ्लीट ने "उद्रंग" शब्द का अर्थ राजा के लिए एकत्रित उपज के अंश के रूप में लिया है । सम्भवत: "उपरिक" के सदृश"उद्रग " भी सामान्य अन्नांश के अतिरिक्त कोई उदग्रहण ही रहा होगा जिसका निश्चित रूप से व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है ।

वाणिज्य अथवा व्यापारिक कर राजकीय आय के प्रमुख स्रोतों में से एक है । उपलब्ध स्रोत ग्रन्थों के बहुधा कुछ ऐसे सिद्धान्त भी मिले है जिनके आधार पर करों का निर्धारण हुआ करता था। व्यापारियों पर कर तथा शुल्क निर्धारित करने के सिद्धान्त तथा विधि चाहे जो भी रहे हो उपलब्ध स्रोतो से ज्ञात होता है कि व्यापारिक करों के रूप में शुल्क राजकीय आय की महत्वपूर्ण मद थी । आपस्तम्ब,गौतम,वशिष्ठ तथा गौतम सदृश धर्मसूत्रों में शुल्क एक प्रचलित राजवित्तीय शब्द है जिसका विस्तृत निरूपण अर्थशास्त्र में हुआ है ।

भूमि कर तथा सभी शुल्क राज्य का आर्थिक आधार था । मनु स्मृति में भी इन शब्दों का समावेश है । कात्यायन ने भी देशी व विदेशी वस्तुओं के आयात निर्यात पर कर लगाये थे । यू0एन0 घोषाल ने कर को परिभाषित किया है उनके अनुसार व्यापारियों पर शहरी कर के अलावा तट कर का उपबन्ध था । परन्तु कौटिल्यके अनुसार ये कर तट कर के रूप में लिया जाता था । उनके अनुसार व्यापारियों को शहरी कर के अलावा बन्दरगाह, तथा जहाज का भी कर देना पड़ता था । अत: प्रवेश शुल्क चूंगी कर

पर अदा करने के बाद भी व्यापारियों को तट कर एवं राजकीय कर देना होता था । अमरकोष में कर का दूसरा नाम धरादीदेय है । काशीराशामील जो ।। वी शताब्दी का आलोचक था के अनुसार व्यापारियों को तट कर पुलिस चौकी पर अदा करना पड़ता था । छठी व सातवी शताब्दी के आलेखों से ज्ञात होता है कि बहलभी के घरासेन द्वितीय तथा गुहासेन से ज्ञात होता है कि इस तरह के आदेश सभी राजकीय कर्मचारियों के साथ शुल्कीकश को भी दिया जाता था । शुल्कीकश का पद उस राजकीय कर्मचारियों का था जो कर लिया करते थे । इस तरह हम देखते है कि शुल्कीकश राज्य का प्रभावी कर्मचारी होता था ।

अन्य प्रकार के कर स्रोत

उपरोक्त राजकीय राजस्व स्रोतों के अतिरिक्त कुछ अन्य राजकीय करों का भी प्रावधान किया गया था, जिनसे राज्य को आय हुआ करती थी, जिनमें जुर्माना, लावारिस सम्पत्ति का राज्य द्वारा ग्रहण, गुप्तनिधि तथा विजित राजाओं के लूट का माल और कर प्रमुख है । राजा इन स्रोतो से अपनी संपूर्ण आय का मात्र एक भाग ही प्राप्त करता था । परन्तु इस काल में प्राय: युद्ध होते रहते थे, जिनके फलस्वरूप लूट का माल तथा कर अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते चले गये । इनके अतिरिक्त राज्यभूमि, जंगल खान तथा इसी प्रकार के अन्य राजकीय एकाधिकारी से राजा को पर्याप्त लाभ हुआ करते थे । जुर्माना राजकीय आय का प्रमुख स्रोत के रूप में सामने आया था । एक भूमिदान पत्र में "चोरवर्ज्जम्"शब्द का उल्लेख मिलता है । फलीर के अनुसार न्यूनपदीय शब्द चोरवर्ज्जम् अर्थात्"चोरों के अतिरिक्त ये व्याख्या उससे अधिक बड़े शब्द "चोर-दड्वर्ज्जम्" से की जा सकती है जिसका अर्थ है चोरो पर लगाये गये जुर्माने के अतिरिक्त फलीर के अनुसार "दशापराध" में परंपरागत

दर अपराधों का सकेत उद्धत है । तीन कायिक तीन मानसिक तथा चार वाचिक । इन्होने अभिलेखों में उल्खित सदशापराध शब्द से इन अपराधों के लिए जुर्माने से प्राप्त आय के दानगृहीता के अधिकार के रूप में पारिभाषित करने का प्रयास किया है । जौली ने "दशापराध" को दस बड़े अपराधों की सूची में रखा है । नारद के अनुसार ये अपराध निम्नांकित है - राजाज्ञा का उल्लंघन ,स्त्रीवध ,वर्णसंकरता,नारकर्म, स्तेय, जारगर्म,वाक्याल्य,दुर्वचन, प्रहार , तथा गर्भपात ।

लावारिस सम्पति पर राज्य का अधिकार एक सामान्य बात थी । कौटिल्य के अनुसार राजा को लावारिस मृत व्यक्ति के दहसंस्कार आदि का तथा उसकी भरण पोषणा के लिए पर्याप्त रकम छोड़ने के उपरान्त उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति लेने का अधिकार है । स्मृतियों के अनुसार भी पुत्ररहित मरने वाले की सम्पत्ति राज्य की हो जायें । उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि विष्णुसेन के दानपत्र लेख से की जा सकती है, जिसमें "अपुत्रंकनग्राह्य" उल्लिखित है । इसका अर्थ यह स्पष्ट होता है कि राजकीय अधिकारी ऐसी सम्पत्ति का अधिग्रहण पुत्र से भिन्न किसी वैध-वारिस के दावे की अवेहलना नही करें ।

उपर्युक्त राजकीय करों के अतिरिक्त धार्मिक तथा गृह्य कृत्यों पर कर लगाने की स्पष्ट प्रवृत्ति का ज्ञात होता है । विष्णुसेन के एक शासन पत्र में किसी स्थानीय व्यापारी के पक्ष में एक विशेषाधिकार का उल्लेख निम्नलिखित रूप में हुआ है, यज्ञ विवाह,उत्सव एवं सीमन्तोन्नयन संस्कारों में शुल्क नही है । डा०सरकार ने भी इसका समर्थन करते हुए अर्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि विवाह आदि कार्यों में कोई कर का प्रावधान न हो । लेकिन तीवरदेव के रजीम फलक में "दारदृणाक" (विवाह कर) शब्द का उल्लेख मिलता है । अगर "दारदृणाक"का अभिप्राय: विवाह कर न भी हो तो भी अभिलेखों से निश्चित प्रमाण मिलता है कि विवाह, उपनयन और यौवनावस्था की प्राप्ति पर भी करों का प्रावधान था ।

राजकीय आय का एक स्रोत विदेशी या शत्रु राज्यों की

संगठित या अंसगठित लूट से सम्बन्धित है । पराजित सामन्तो,शासको या जन जातियो से प्राप्त उपहारों से राजकोष को स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ होती गयी । मनु के एक उद्धरण में युद्ध की आय को राज्य की जीविका का विधि सम्मत स्रोत कहा गया है । वस्तुत: प्रस्तुत काल में युद्धों की अधिकता के फलस्वरूप भी इनके महत्व में अधिकाधिक वृद्धि होती चली गयी ।

1-ऋग्वेद,5,101,131
2-अर्थशास्त्र,2,24
3-एव0सी0चकलदार,सोशल लाइफ इन एन्सियेट इण्ड्यिा, कलकत्ता 1929,पृ0151-155,
4-वही,पृ0 243 ।
5-वी0पी0सिन्हा,दी डिक्लाइन आफ दी किगडम आफ मगध,पटना 1954,पृ0 151 ।
6-नारद स्मृति, 11,23 ।
7-मत्स्य पुराण, 59,पृ03-9 ।
8-अर्थशास्त्र, 2, 1 ।
9-कादम्बरी,काल,पृ0245
10-ए0एस0शमाशास्त्री, पृ0 75-82 ।
11-अर्थशास्त्र, 2/35 ।

वाणिज्य एवं व्यापार

प्राचीन भारत में भारतीय कलाकारों द्वारा निर्मित कच्चा माल एवं उससे निर्मित वस्तुओं के उपयोगिता ने भारतीय वाणिज्य को बहुत ही बढ़ावा दिया । साधारणतः भारत को एक कृषि प्रधान देश माना जाता है , परन्तु इसके औधोगिक संस्थान का भी विशिष्ट महत्व था । यही बाते यहां के व्यापार एवं वाणिज्य के विषय में भी कही जा सकती है ।

वैदिक काल से पहले व्यापार एवं वाणिज्य का आर्थिक जीवन में महत्व है । वैदिक काल के लेखों में पाया जाता है कि लाभ के लिए सुदूर प्रदेशों में व्यापार किया जाता था । वाणिज्य सम्बन्धी लेन-देन वस्तु द्वारा होता था । गाय मानक ईकाई के रूप में मानी जाती थी । वैदिक युग में व्यापार के लिए सुदूर प्रदेशों में समुद्र से जाया करते थे । कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि वाणिज्य अधीक्षक वस्तुओं के मूल्य उसकी आवश्यकता एवं मूल्य का निर्धारण करते थे, जो वस्तुएं समुद्र मार्ग के द्वारा लाये और ले जाये जाते थे , वे वस्तुओ के वितरण, अपूर्ति एवं विक्री का समय भी निर्धारण करते थे । {1} गुप्त काल में वाणिज्य व्यापार बहुत ही सुदृढ़ था । एस0के0 मैत्री के अनुसार "भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक मजबूत दुर्ग बन गया था " {2} वाण के अनुसार दूकानों की कतार लगी रहती थी । {3} उज्जैन के बाजार की साफ चौड़ी सड़के समुद्र की तरह दिखती थी , जिसमें शंख, मोती, घोंघा आदि रहते थे । इत्र एवं सुगन्ध के व्यापारी सुगन्ध एवं लेप के भण्डार रखा करते थे । पान के व्यापारी कत्था, लौग, इलाइची आदि का भण्डार व्यापार के लिए रखा करते थे । मेघातिथि के अनुसार द्वारिका के बाजार रत्नों से भरे रहते थे । जो दूसरे प्रदेश को बेच कर लाभ कमाया करते थे । सड़को के दोनो तरफ दुकाने लगी रहती थी , दुकानों पर बहुत भीड लगी रहती थी । सम्पूर्ण उज्जैन शहर व्यापारियों व खरीदारों के शोर गुल में डूबा रहता था ।

साहित्यों से ज्ञात होता है कि "शराब की दुकानें भी थी ,जहां महिलायें भी अपने सम्बन्धीयों के साथ जाया करती थी ।(4)ह्युनसंग के अनुसार राज्य मार्ग पर दुकाने होती थी चीनी यात्रियों के अनुसार कसाई व मल्लाह शहर के बाहर रहते थे तथा उन्हे अछूत समझा जाता था ।

ग्रामीण जीवन सादगी से भरा था । गांव के कारीगर अपना सामान खुद ही बनाते,मरम्मत करते व बेचते थे । भास्कर वर्मन के निधानपुर लेख से ज्ञात होता है कि "गांवो को रेखाकिंत कर ब्राह्मणों को दान दिया जाता था" ।दामोदरपुर के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि ग्रामीण घाट की व्यवस्था थी, जो जमीन की खरीदगी से होती थी । बाण ने वन्य जीवन के विषय में लिखा है कि "जंगली लोग हाथी के दांत, सिंह के बाल, सिन्धु के छाल, रुई के पेड़,मोर के पंख आदि एकत्रित करते थे । वाण ने लिखा है कि "गांव की स्त्रियां वनों से टोकरी में फल लाती व दूसरे गांव में बेंचती थी"

व्यापार का मुख्य केन्द्र शहर था । ह्वेनसांग ने लिखा है कि वहां के कुछ शहर बहुमूल्य वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध थे । भारत के विभिन्न प्रदेश विभिन्न वस्तुओ के लिए प्रसिद्ध थे । जैसे कश्मीर केशर औषधी व कुमकुम के लिए प्रसिद्ध थे । कास्मस ने दक्षिण भारत को गोलमिर्च का देश बताया तथा श्रीलंका को ठीक उसके दूसरी तरफ स्थित बताया है । ह्वेनसांग की यात्रा के समय में कामरूप तथा कलिंग में अच्छे प्रकार के हाथी पाये जाते थे । भारतीय प्रायद्वीप में व्यापरी सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया करते थे । इसलिये कश्मीर का केशर एवं कुमकुम भारत के प्रसिद्ध शहरों में पहुचाये जाते थे इसी तरह चन्दन की लकड़ी व मोती भी दक्षिण भारत व अन्य प्रदेशों में ले जाया करते थे तथा वहां उसे दुगने मूल्य में बेचते थे । सामान का आवागमन अधिकतर वारहसिंग्हा तथा हिरणों पर लाद कर किया जाता था । ह्वेनसांग के अनुसार कामरूप के दक्षिण पूर्व में जंगली

हाथियों का झुण्ड पाया जाता था और उसका उपयोग युद्ध के समय किया जाता था । कंलिग कामरुप के हाथियों की विक्री दूसरे जगहों पर होती थी और वहां लाभ प्राप्त किया जाता था ।हाथी के दांत बहुत मंहगे माने जाते थे उनसे बने हुए सामान बाजार मेंबिक्री को जाते थे । वाण ने लिखा है कि जो श्लोक बोला करते थें , वे पौण्डरा देश के सिल्क के कपड़ा पहना करते थे । सोना,चांदी सिन्ध व उदयन में पाये जाते थे । उदयन में लोहा भी पाया जाता था । नेपाल में तांबा मिलता था । मयूर व ब्रह्मपुर में शीशा एवं कांच पाये जाते थे । सिन्ध में विभिन्न प्रकार के नमक तथा ऊजला नमक पाये जाते थे ,जिसका उपयोग विदेशी लोग दवा के रुप में करते थे । भड़ौच में समुद्री नमक बनाया जाता था तथा द्राविद में बहुमूल्य पत्थर पाये जाते थे । उस समय धातु का उपयोग कृषि औजार ,औधोगिक यन्त्र ,वर्तन तथा आभूषणों के निर्माण में किया जाता था तथा इसका सिक्का भी बनाया जाता था । जिसका उपयोग संपूर्ण, देश में वस्तुओं के खरीद-विक्री में किया जाता था । कल्हण के अनुसार कश्मीर का राजा अनन्त पद्मराज नाम के व्यापारी पर कृपा दृष्टि रखता था जो उसे भारत के विभिन्न भागों से पान का पत्ता लाकर देता था । अत: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढावा प्राप्त था जो उपभोक्ताओं को उपलब्ध था । वारह मिहिर के कथनानुसार ज्योतिष ग्रहों के अनुसार व्यापारियों का भविष्य बताते थे तथा उनके उत्थान की कामना करते थे । सामानों का वर्गीकरण विभिन्न कोटियों में ग्रह एवं नक्षत्रों के अनुसार होता था । ताकि खरीद एंव विक्री में अंश लाभ या दूना लाभ हो सके या इच्छा के मुताबिक लाभ हो । ऋग्वेदों के स्रोतो से ज्ञात होता है कि अधिक लाभ के लिए लाभांश का दान किया करते थे । आरम्भ से ही व्यापारियों का मुख्य उद्धेश्य था कि समाज के ये धनी वर्ग माने जाये । मनु के अनुसार वस्तुओं की उत्तमता एवं खराबी के लिए व्यापारी ही

जिम्मेदार होते थे । व्यापारियों का समाज में उनके धन एवं भाग्य के कारण बहुत ही महत्व था तथा धनी व्यापारियों का समाज में अधिक सम्मान था । व्यापारियों का महत्व उनके सामानों के आदान-प्रदान से ही होता था । शिलालेखों से ज्ञात होता है कि प्रमुख व्यापारी जिलाप्रशासन में भी सहायक होता था । दामोदर-पुर के लेख से ज्ञात होता है कि राज्य प्रशासन नगर श्रेष्ठ रिमुपाल के द्वारा शासन में कोटीभरस, पुण्ड्रवर्द्धन मुक्ति आदि में सहायता लेती थी तथा मुख्य कुलिका, मुख्य स्कन्दपाल तथा प्रमुख व्यापारी से भी सहयोग लेती थी । इत्सिंग ने लिखा है कि व्यापारी समाज में आ-दर की दृष्टि से देखे जाते थे, वे किसी को हानि नही पहुंचाते थे । मूल्यों के गिरावट होने से व्यापार में बहुत ही बाधा होती थी और कभी-कभी मूल्यों में बहुत अधिक बृद्धि हो जाती थी । व्यापारि-यों को दोनों स्थिति में गंभीर चिंता होती थी । उस समय उचित मूल्य एवं व्यापार की आवश्यकता होती थी । समाज के दूसरे व्यक्ति-तयों के अलावा व्यापारियों को जोखिम उठाना पड़ता था, व उन सब के विशेषाधिकार को भी मान्यता थी । उनलोंगों को सहकारी समितियां गठन करने के लिए अधिकार स्वतंत्र थे, जिसके द्वारा आप-त्तिकाल में सदस्यों के लाभ का ध्यान रखते थे ।

लेखो से पता चलता है कि व्यापारियों के आचरण से समाज के लोगों की दशा दयनीय हो गयी थी । पेशे के हिसाब से ये लोग चतुर, चलाक होते थे जिन्हें समाज मान्यता नही देती थी मनु ने लिखा है कि व्यापारी अपने व्यापार की पवित्रता के प्रति प्रयत्नशील रहते थे तथा सामान्य रूप से समाज में यही होता था । लेकिन प्रयोगात्मक रूप से न्यायसंगत कार्य हमेशा नही होता था । वाण के अनुसार व्यापारी लोग धूर्त होते थे । ह्वेनसांग ने लिखा है कि भड़ौच तथा सूरत के व्यापारी स्वभाव से धोखेबाज तथा क्रूर होते होते थे । ऐसा आचरण उनकी अलोकप्रियता का कारण था ।

उस समय अन्तर्राज्यीय व्यापार करना बहुत ही जोखिम का काम था । गुप्त काल के पतन के पश्चात डकैती तथा अपराध

अक्सर हुआ करते थे । ह्वेनसांग ने लिखा है सड़क केरास्तों में डकैतों का आधिपत्य था। कुशीनगर जाते समय एक यात्री ताका प्रदेश में डकैतों से घिर गया था । जब वह बहुत बड़े जंगल को पार कर रहा था तो उसने देखा कि डकैत एवं शिकारी यात्रियों को लूटने एवं उनकी हत्या करने के लिए इन्तजार करते थे । कुछ लुटेरों ने गांव को भी अपने अधीन कर रखा था ।

ह्वेनसांग के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत घने जगंलो से भरा हुआ था और उस समय प्राकृतिक स्थिति ऐसी थी कि सड़क के रास्ते व्यापारी अपनी कीमती वस्तुओं को नही ले जा सकते थे, क्योकि वह सुरक्षित नही थे । इसलिये सुरक्षा के लिए व्यापारी समूहो में यात्रा करते थे । वृहस्पति के अनुसार डकैतों को आक्रमण का समान माना जाता था । दण्डिन के अनुसार "पुष्पोद्‌भव नामक व्यक्ति उज्जैन जाने के लिए करवन व्यापारी से दोस्ती की जो विन्ध्य प्रदेश का निवासी जो अपने कीमती सामान के साथ सुरक्षित उज्जैन पहुंचा, जिससे पता चलता है कि सड़क के रास्ते भी व्यापार किया जाता था।

अर्न्तराज्य व्यापार सड़क के रास्ते से ही नही अपितु जल-मार्ग से भी होता था । सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भी जलमार्ग से ही व्यापार होते थे । धर्मादित्य के अनुसार बगांल के कई जिलों में जहाज बनाने का कार्य होता था । जहाज बनाने के कारखाने व्यापारियों को अप्रत्यक्ष सहायता करती थी, जिस कारण जलमार्ग से वे अपने व्यापार को करते थे । नारद व वछस्पति सदृश कात्यायन ने भी व्यापारियों के लिए कुछ नियम और कानून बनाये थे । उन्हेंने उल्लेख किया है कि यदि कोई व्यापारी साझेदारी संस्थान का सदस्य बनता है तो प्रत्येक को एकरनामा बनाना होगा जो वस्तु की खरी-विक्री,खाने का खर्च,देखभाल आदि खर्चो से सम्बन्धित होगा । उस समय साझेदारी का व्यापार काफी प्रचलित था ।

स्मृति लेखो से पता चलता है कि व्यापारी अपने समानों को ढोने के लिए भाड़े का मजदूर रखते थे । नारद के अनुसार लाभ का दसवां हिस्सा मजदूरों को उनके पारिश्रमिक पर दिया जाता था ।{6} उन्होने

नियम बनाया कि मजदूरों को उनकी मजदूरी रास्ते के दूरी के अनुसार भुगतान किया जाना चाहिए । उन्होने कुछ उदार नियम भी बनवाया था जैसे किसी मजदूर का सामान रास्ते में लूटेरों द्वारा लूटे जाने या बाढ़ में क्षति होने पर उनकी मजदूरी नही दिया जाता था । ये नियम निर्वाहिण करने वाले की दूरदर्शिता थी कि रास्ते में चाहे जो भी खतरा हो सामना करना ही है । परन्तु अधिकतर मजदूर अपने करार से मुकुर जाते थे । इन अनुभवों के आधार पर नारद ने नियम बनाया कि यदि कोई मजदूर वस्तु को निश्चित स्थान तक नही पहुं-चाता था तो उसे उसकी मजदूरी का छठा हिस्सा दिया जाता था । कात्यायन ने लिखा है कि यदि कोई व्यापारी भाड़े पर हाथी, घोड़े व ऊंट का प्रयोग करता है व निर्धारित समय पर नही लौटता तो उसे निर्धारित मूल्य के अतिरिक्त और मूल्य देना पड़ता था । व्यापार में इन नियमों का प्रयोग किया जाता था । कात्यायन ने व्यापारियों एवं ग्रहकों के संरक्षण के लिए भी कुछ निमय निर्धारित किया था । इनके अनुसार यदि अनुबन्ध खरीद एवं उपहार प्रलेख द्वारा होता तथा साक्ष्य द्वारा तो ऐसी अवस्था में प्रलेख का महत्व अधिक था । साधारणत: गड़बड़ी से बचने के लिए लिखित रूप में ही लेन देन होता था । उस समय के लेखों से ज्ञात होता है कि जमीन की बिक्री लिखित रूप से होती थी जो एक महत्वपूर्ण प्रलेख माना जाता था छोटे लेने देने में प्रलेखों का प्रयोग होता था । वस्तुओं की खरीदबिक्री और उससे सम्-बन्धित कोई समस्या पैदा होती तो कात्यायन के अनुसार राजा को प्रार्थी की बात सुननी पड़ती थी । प्राय: व्यापारी ग्रहको को ठगा करते थे । इसलिए ग्रहकों को ठगी से बचाने के लिए व्यापारियों को दण्ड दिया जाता था जो ग्रहको को शुद्ध तोल व नकली वस्तु बेचते थे । कात्यायन के अनुसार यदि कोई वस्तु उधार लेताऔर छ: महीने तक भुगतान नही करता तो उसे सूत देना पड़ता था । (7) इस तरह के नियम व्यापार को बढावा देने और वस्तु विनियम की सार्थकता

को बनाये रखने के लिये किया गया था ।

भूमि कर तथा सभी शुल्क राज्य का आर्थिक आधार था । अर्थवेद में पहले से ही कर की व्यवस्था थी । मनुस्मृति में भी इन वस्तुओं का समावेश है ।§8§ यू0एन0 घोषाल ने कर को परिभाषित किया है कि व्यापारियों पर शहरी कर के अतिरिक्त तट कर का उपबन्ध था । §9§ परन्तु कौटिल्य के अनुसार ये कर तट कर के रूप में लिये जाते थे । उनके अनुसार व्यापारियों को शहरी कर के अलावा बन्दरगाह तथा जहाज का भी कर देना पड़ता था । अत: प्रवेश शुल्क चूंगी कर अदा करने के बाद भी व्यापारियों को तट कर एवं राजकीय कर देना पड़ता था । सीत स्वामी जो ।।वी सदी के आलोचक थे के अनुसार व्यापारियों को तट कर पुलिस चौकी पर अदा करना पड़ता था । §10§

मधुवन अभिलेख के शब्द तुल्यमेय से ज्ञात होता है कि ये कर्मचारी जो गांव में भूमि कर तथा व्यापारियों से करों को वसूली किया करते थे । तुल्यमेय शब्द का अर्थ माप एवं तोलहोता है, यू0 एम0 घोषाल के अनुसार ये राजस्व शब्द है । §11§ ह्वेनसांग के अनुसार व्यापारी अपनी वस्तुओं को बाहर ले जाने पर थोड़ा कर दिया करते थे । विदेशी व्यापार भारतीय अर्थ व्यवस्था का मुख्य अंग था । विदेशी व्यापार और आयात एवं निर्यात के लिए उर्पयुक्त बन्दरगाह की आवश्यकता थी । उस समय में भी भारत में विश्वस्तर के बन्दरगाह थे तथा विश्वस्तर का व्यापार करते थे । छठी शताब्दी के मध्य में श्रीलंका आदि से व्यापार होता था । भारत में उस समय अच्छे बन्दरगाह थे,जैसे -सिन्धु ओरहथ§गुजरात§कलियना§कल्याण§ और मालावाड़ के पांच बन्दरगाह भी थे । ह्वेनसांग के अभिलेख से भी अन्तर्देशीय व्यापार की जानकारी मिलती है । उनके अनुसार भारत के पूर्वी तट पर ताम्रलिप्ति अवस्थित था । यह प्रदेश सड़क एवं जल मार्ग का संगम था । इसलिए यहां बहुमूल्य वस्तुये उपलब्ध रहती थी । अत: यहां के

निवासी खुशहाल थे । §12§ पी0सी0बागची के अनुसार 17वी शताब्दी तक पूर्वी भारत के आर्थिक इतिहास में ताम्रलिप्ति का महत्वपूर्ण स्थान था ।

विदेशी व्यापार से संकटपूर्ण सड़क रास्ते तथा समुद्री चट्टाने बाधा उत्पन्न करती थी । पूर्व में ही फाहियान ने इस संकटपूर्ण रास्ते एवं विपत्ति भरे समुद्री व्यापार का उल्लेख कर चुका है । वराहमिहिर ने लिखा है कि ये विपत्तियां व्यापार एवं नाविकों को नुकसान पहुचाया करती थी । जहाजों के दुर्घटना होने की बाते ह्वेनसांग ने भी की है । दण्डिन ने भी समुद्री खबरो के बारे में लिखा है । उसने लिखा है कि रत्नोभव जो समुद्री व्यापारी था, जब वह कात्यायन से लौट रहा था तब उसने एक व्यापारी की लड़की से विवाह किया था, और जब वह अपनी दुल्हन के साथ लौट रहा था तो वह जहाज में भंयकर तूफान में फंस कर डूब गया । इन विवरणों से पता चलता है कि समुद्री यात्राएं बहुत ही खतरनाक थी व नाविकों को प्रकृति की दया पर निर्भर रहना पड़ता था । इन बाधाओं के बावजूद भी भारतीय व्यापारी उत्साह के साथ समुद्री यात्रा एवं व्यापार करते थे । दण्डिन के जहाज के कप्तान जिसका नाम ग्रहगुप्त था, के बारे में लिखा है कि वह धन का देवता था और बहल भी शहर का निवासी था । उसने रत्नोभव नाम के व्यक्ति के बारे में लिखा है कि उसे व्यापार एवं समुद्र यात्रा का बहुत ही ज्ञान एवं अनुभव था । इसमें सन्देह नही किया जा सकता कि समुद्र तट व्यापारियों के बडे जहाज से भरा रहता था। हर्ष के समय में सामान्य रूप से समुद्र से यात्रा कि जाती थी ।

इस काल में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध बाथजेटीन साम्राज्य से भी अच्छे थे । जहां से मसाला, चटनी आदि वराहमिहिर के अनुसार श्रीलंका समुद्री मोतियो का भण्डार था । वहां के मोती विभिन्न आकर के चमकदार एवं बड़े होते थे । अत: वहां के मोतियों का भारत के बाजार में अच्छी मांग थी । भारतीयों को मोती के हार व

झूमके आदि के प्रति लगाव था जिसकी जानकारी हमें लेखों से प्राप्त होती है ।

पूर्व काल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चीनी सिल्क का भारत में बहुत ही मांग थी ।कौटिल्य ने भी चीनी सिल्क की चर्चा की है । कालीदास ने भी इस विषय में लिखा है । वाण के अनुसार हर्ष के सैनिक उच्च अधिकारी चीनी कवच का प्रयोग करते थे। इस काल मे फारस भी भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था । आधुनिक काल की तरह फारस की खाड़ी में मोती पाये जाते थे । फारस के मोती अच्छे,बजनी तथा बहुमूल्य थे । फारस से घोड़ो का निर्यात लंका किया जाता था ।

यह निश्चित रूप से तो नही कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य है कि भारत एवं मध्य एशिया के देशों से कुछ व्यापारिक सम्बन्ध था । ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि भारतीय सभ्यता की छाप मध्य एशिया तक पहुंच गयी थी । सामान्य रूप से इन देशो से भी भारत में सामान पहुंचाया जाता था । कोरिया के साथ भी भारत का अच्छा सम्बन्ध था । सन् 638 ई0 में कोरिया का एक यात्री आर्यवर्मन नालन्दा आया था ।

पूर्व में ताम्रलिप्ति समुद्री व्यापार का केन्द्र बिन्दु था । फाह्यान पांचवी शताब्दी में ताम्रलिप्ति से एक व्यापारिक जहाज से श्रीलंका होते हुए चीन लौटा था । भारत तथा चीन के बीच के समुद्री रास्ते में बहुत ही ठहराव की जगह थी -जैसे -मलक्का, वर्मा का तट,जावा तथा आराकान । इत्सिंग के अनुसार इन जगहों पर भारतीय उपनिवेश थे जहां भारतीय रीति-रिवाजों का प्रचलन था । उसके अनुसार सुमात्रा का श्रीभोज बौद्ध ज्ञान का केन्द्र था । उस समय में भारतीयों का सम्बन्ध कम्बोडियां से भी था । हिन्दू राजघरानों का उद्‌भव हिन्द चीन के कम्बोडिया चम्पा आदि नगरो में हुआ था ।

दुर्गम और विपत्ति के होते हुए भो भारतीय व्यापारी

व्यापार करते थे तथा वस्तुओ का आदान-प्रदान किया करते थे तथा अपने देश तथा पड़ौसी देश के जरूरतों को पूरा करते थे ।

1-अर्थ शास्त्र, सम्पादित आर0रामाशास्त्री, मैसूर, 1929 , पृ0 104-106
2-वही ।
3-हर्षचरित, सम्पादित ई0वी0कोवेल एवं एफ0डब्लू थामस , दिल्ली 1961, पृ0111 ।
4-नागानन्द, हर्ष, 3 ।
5-हर्षचरित, पृ0 171 ।
6-नारदस्मृति , ज0ज0जौली, कलकत्ता, 1885, पृ0 3 ।
7-वही, पृ0507
8-गौतमधर्मशास्त्र, 10, 25, 26, मनुस्मृति, 8, 307 ।
9-यू0एन0घोषाल दि विगनिग्स आफ इण्डियन हिस्टोरियोग्राफी एण्ड अदर एसेज, कलकत्ता, 1944, पृ0 177 ।
10-एस0के0मैत्री, उपरिवृत , पृ0 65 ।
11-यू0एन0घोषाल, हिन्दू रेवन्यू सिस्टम, कलकत्ता, 1929, पृ0223 ।
12-वाटर्स, 2, पृ0 190 ।

उद्योग व्यवस्था

कृषि प्राचीन भारत में लोगों का मुख्य पेशा होते हुए भी, विभिन्न उद्योगों एवं शिल्पियों ने भी इस काल की अर्थव्यवस्था की उन्नति में अपना सहयोग दिया । कृषि ने विभिन्न उद्योगों एवं शिल्पों के लिए बहुतायत कच्चा माल उपलब्ध कराया जिससे विभिन्न महत्वपूर्ण शिल्प एवं उद्योगों का विकास हुआ है । भारत के विशाल प्राकृतिक सम्पदा-खनिज,समुद्रो,जान्तव एवं वनस्पति ने शिल्पीयों एवं उद्योगकर्मियों को विभिन्न सर्जनात्मक कलाओं विभूषित किया है ।

प्रारम्भ से ही भारत में खनिज उद्योग प्रचलित थे । खनिज पदार्थ में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लोहा होता है । जिससे कृषि औजारों के अलावा घरेलू वस्तुओं के उपयोग में आता है । वाण ने लौहारों को कोयले के ढ़ेर को प्रज्वलित रखने का वर्णनि किया है, जो लोह उद्योग के लिएआवश्यक है । लोहे की वस्तुओं के साथ-साथ लोहे के आभूषण भी प्रयोग में आते थे । नालन्दा की एक मोहर में दो व्यक्तियों को एक कुल्हाड़ी ढ़ोते दिखाया है । ह्वेनसांग के अनुसार लोहा अग्नि परीक्षा के लिए भी प्रयुक्त होता था ।

लोहे के अतिरिक्त तांबे का व्यवसाय भी किया जाता था । ताबां भी एक महत्वपूर्ण धातु था । ताम्र से मुख्यत: बर्तन,डेगची, ताबां आदि बनते थे । ताम्र का प्रयोग सिक्के ढ़ालने एवं दान पत्रों को लिपिबद्ध करने, विशेषकर भूमि सम्बन्धी दान एवं अन्य लेन-देन के कार्यों को लिपिबद्ध करने के लिए भी किया जाता था। इस काल का प्रसिद्ध ऐतिहासिक घोषणा पत्र भास्करवर्मन का नियानपुर दान पत्र,ताम्र पर लिपिबद्ध किया गया था । अत: ताम्र की मांग अत्यधिक थी । ह्वेनसांग ने भारतीय ताम्रकारों के प्रतिमा एवं निपुणाता के प्रमाण के रूप में महेश्वर के 100 फोट ऊंचो शान्त,भत्य एवं जीवन्त प्रतिमा का वर्णनि किया है । उसने यह भी कहा है कि शिदित्य द्वारा निर्माणि करवायें जा रहें पितल से ढ़के निर्माणाधीन बिहार को भी देखा,जो वन जाने पर 100 फीट या उससे भी ऊंचा

होगा । ये विशाल काय एवं प्रभावशाली संरचनायें उन्नत धातु-कर्मीय तथा औद्योगिक विकास की अवस्था में भी सम्भव है तथा इस काल में इसके व्यापक प्रयोग का संकेत करती है ।

ताम्र परवर्ती काल में भी अत्यधिक धातु था । बंगाल में स्थित पहाड़पुर उत्खनन में अनेक कास्य मूर्तियां, ताम्रचूड़ियां, प्याला, छोटी घंटी एवं चपटा छड पाया गया है ।

अन्य धातुओं में सोना एवं चांदी कीमती होने के कारण भारी मांग में थे । । इस काल में स्त्री एवं पुरूष दोनों को आभूषण बहुत प्रिय थे जिसके निर्माण में इन कीमती धातुओं का प्रयोग किया जाता था । ह्वेनसांग के अनुसार सोना चांदी एवं अन्य धातु भारत में काफी मात्रा में थी ।[1] वराहमिहिर ने अनेक स्थानों पर सोनारों का उल्लेख किया है । सोने एवं चांदी के खान द्वारा सामन्तों के इस मांग की पूर्ति की जाती थी । राजकीय परिवारों में सोने एवं चांदी के बर्तनों का प्रचलन था । वाण ने सोने के पक्ष सन-पात्र, जल पात्र, सिंघ के आकार का जल-पात्र, हल, जुआ एवं मूसल, हाथी दांत आदि वस्तुओं का वर्णन किया है । अभिजात वर्ग के घरों में ये दैनिक प्रयोग में लाये जाने वाली वस्तुयें थी । ह्वेनसांग ने सोने एवं चांदी के पात्रों के निर्माण में उत्कृष्ट कारीगरी का उल्लेख किया है । [2] वात्स्यायन स्परत्नपरीक्षा, धातुर्वाद एवं मणिरानकरज्ञानम् को 64 कलाओं की सूची में रखा है ।[3] इस प्रकार इस काल के अनुसार अपने व्यवसाय के ज्ञान के पूर्ण जानकार थे ।इस काल के साहित्य में लोगों द्वारा प्रयुक्त आभूषणों का अत्यधिक वर्णन है । मत्स्य एवं सर्पाकार बाजूबन्द, चन्द्रकार हार, सोने से मड़ा बघनखा एवं तारे, त्रिशुल आकार का कर्णफूल स्वर्णकारों द्वारा जनता में लोकप्रिय आभूषण की पूर्ति में दक्षता एवं नवीनता का परिचायक है । अभिलेखों में कगन बाजूबन्द, कर्णफूल मेखला एवं पायल का उल्लेख मिलता है । मूर्तिकला में आभूषणों का विशाद चित्रण है । पहाडपुर के मिथुन

चित्रण में महिला पात्र मनकेदार प्रकार की पायल पहने चित्रित है । (4) मध्य भारत के एक महिला के चित्रण में हंसुली एवं सिर पर विभिन्न आभूषणोंका क्लिष्ट चित्रण है । ये सभी इस काल की सुरुचितापूर्णता का परिचायक है । ह्वेनसांग ने यह भी उल्लेख किया है कि राजाओं के वस्त्र एवं आभूषण तथा वैभव अभूत पूर्ण था ।

चांदी एवं सोने का व्यापार सिक्कामुद्रण में भी होता था । बंगाल से प्राप्त अनेक सोने के सिक्के इस काल के है । हालांकि ये गुप्त सिक्कों के नकल है फिर भी मुद्रण में दक्षता एवं कलाकारिता का परिचय देते है । आर0वर्नस ने कुछ चांदी के सिक्के हर्षवर्धन के बतलाये है । इस प्रकार कीमती होने के बावजूद चांदी एवं सोने का व्यापार सीमित नही था । एवं यह इस धातु के कर्मकारों के दक्षता में वृद्धि के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध कराता था ।

बहुमूल्य एवं अल्पमूल्य के पत्थर आभूषणों एवं बर्तनों के उत्पादन में व्यापक रूप से प्रयुक्त होते थे । अनपढ़ एवं अपरिष्कृत पत्थरों की तराश कर सोने या चांदी के बर्तन में सजाकर उन्हे परिष्कृत किया जाता था । बाण के कादम्बरी के चूडामणि तथा राज्यश्री के मरक्त के वर्णन से पत्थरों की कटाई एवं परिष्कृतिकरण में दक्षता का पता चलता है । वराहमिहिर में हीरा,मोती आदि बहुमूल्य पत्थरों के गुणों एवं मूल्यों का वर्णन मिलता है । समकालीन साहित्य से विभिन्न पत्थरों यथा,मानिक,नीलम,हीरा,चन्द्रशिला आदि का वर्णन है ।

लवण उद्योग बहुत महत्वपूर्ण था एवं लोगों के दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करता था । अमरसिंह के अनुसार दो प्रकार के लक्षण होते थे -एक जो खारे समुद्री जल से मिलता था एवं दूसरा पत्थरों से । इस काल में दोनों प्रकार उपयोग में लाये जाते थे । ह्वेनसांग के अनुसार भड़ौच में समुद्री जल को उबालकर लवण बनाया जाता था , जबकि सिन्ध में लवण पत्थर उपलब्ध था । चम्मक ताम्र पत्र अभिलेख में एक गांव को दान का वर्णन है जो हर प्रकार के कर से मुक्त था एवं उसे

लवण या आर्द्र लवण पर भी कर नही देना था । इस प्रकार लवण कर योग्य वस्तु मानी जाती थी ।

प्रस्तर के अनेक उपयोग थे यथा, स्थापत्य कला में प्रयुक्त करने के अतिरिक्त मूर्तिकला में भी प्रस्तर उपयोग में लाये जाते थे । ह्वेनसांग के अनुसार पूर्णवर्मन ने बौधिवृक्ष को पुर्नजीवित कर उसके चारों ओर 24फीटऊंचा प्रस्तर भीत्ति लगवाया । राजमिस्त्री विशाल भवन, मन्दिर, विहार, दीवार एवं स्तम्भ इत्यादि बनाने में व्यस्त थे । नालन्दा में विहारों को पंक्ति थी जिनकी छत दीवारों को छूती थी। आवासीय विश्वविधालय होने के कारण वहां के प्रत्येक कक्ष में एक या दो प्रस्तर के स्थायी चबूतरें सोने के लिए एवं पुस्तक तथा दीप रखने के लिये बना था । §5§देवगढ़ का विष्णु मन्दिर आदि कुछ ही मन्दिर बचें थे, जो उच्चतम स्थापत्य कला के साक्षी है । प्रस्तर खण्डों का इस्तेमाल वाटिका आसन एवं कृत्रिम पहाड़ो के निर्माण में होता था । घरेलू वस्तुओं में भी इनका प्रयोग होता था ।

उत्खनन से अनेक जगहों पर बहुत से प्रस्तर मूर्तियां मिली है । गुप्तकाल की मूर्तियों की तरह शालीन, सन्तुलित, जटिल एवं मौलिक नही होते हुए भी इस काल की कुछ मूर्तियां उच्च कोटि की थी । भागलपुर से प्राप्त एक चोखटपर नारी आकृति, मध्यभारत से एक महिला आकृति, कश्मीर में उशाकर से प्राप्त एक बालिका का सिर, बोधिसत्व का धड़ एवं पहाड़पुर मूर्ति कला इस काल के उल्लेखनीय नमूने है । प्रस्तर लेखन वस्तु के रूप में भी प्रयुक्त होता था । नेपाली अभिलेख अक्सर बलवा पत्थर, स्लेट पत्थर एवं काले पत्थर थे । भारत के विभिन्न भागो सेअनेक प्रस्तर अभिलेखों को खोजकर उनका अध्ययन किया जा चुका है ।

माण्डकर्म भी एक विकसित उद्योग था । वास्तव में इस उद्योग का इतिहास प्रागेतिहासिक काल में मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा संस्कृति से जोड़ा जा सकता है । उत्खनन से बहुत मात्रा में गुप्त काल एवं गुप्तकालोत्तर मृद्भाण्ड यथा कटोरी, मर्तबान आदि पाये गये है । पतली गर्दन वाली कटोरी अनेक प्रकार के कलश, थाली, कप इत्यादि पहाड़पुर के उत्खनन स्थल से पाये गये है । ये ह्वेनसांग के वर्णन की पुष्टि करता

है कि भारत में घरेलू बर्तन मुख्यत: मिट्टी के थे , व विभिन्न प्रकार के आवश्यक मृद्भाण्डों को काफी संख्या है । बाण ने हंसवेग द्वारा हर्षवर्द्धनके लिए मिट्टी के पात्र में चाश्नी लाने का वर्णन किया है । आश्रम में मिट्टी के कमण्डल के टुकडे बिखरे रहते थे । दैनिक जीवन में प्रयुक्त मृद्भाण्डोंके अलावा अनेक उत्तम कोटि की मूर्तियां भी पायी गयी है । बाण ने अनेक मिट्टी के खिलोनों का भी वर्णन कियाहै । मिट्टी के मनकों की बहुत अधिक मांग थी । एन0के0मैत्री के अनुसार ऐसे मनके निम्न वर्ग के लोगों द्वारा आभूषण रूप में प्रयोग आते थे ।

§6§ मिट्टी की मुद्रायें भी प्रयोग में आती थी इस काल की अधिकारिक एवं व्यक्तिगत मुद्राऐं भी पायी गयी है जो भेजे गये प्रलेखों को अविप्रमाणित करने के समर्थन में साथ भेजे जाते थे । इनमें से कुछ मुद्रायें धूप में सुखायी गयी थी व कुछ पूर्णरूप से पकाई जाती थी ।

ईट व खपड़ा के उत्पादन का वर्णन ह्वेनसांग के विवरण से स्पष्ट होता है । सभागृह व छतदार बुर्ज पक्के व अदग्ध खपड़े से ढ़का रहता था । नालन्दा व पहाड़पुर आदि स्थानों में ईटों के स्थापत्य देखे जा सकते है ।

समुद्री उत्पादनों में मोती, मूंगा व शंख प्रमुख रूप से है । इन सब में मोती अत्यधिक प्रमुख माना गया है । नर तथा नारी द्वारा अपने आभूषण में मोती की लडी प्रयोग में लाते थे । मोती निकालने के श्रेत्र थे सौराष्ट्र, ताम्रपर्णी, उत्तरदेश, पार्श्वा तथा हिमालय । ह्वेनसांग के अनुसार दक्षिण भारत में मलकर समुद्री मोतियों का भण्डार था । उसमें मोतियों का मुद्रा के रूप में प्रचलन का भी वर्णन किया है । समुद्र से अनेक प्रकार के सीपी विभिन्न उपयोगों के लिए निकाले जाते थे । बाण ने प्रभाकर वर्द्धन के राजकीय परिवार के सीपी §भारतीय § पात्रों का वर्णन किया है ।§7§

शंख शुभ अवसरों पर बजाये जातें थे, एवं समय की घोषणा करने के लिए भी । शंख को काट कर चूड़ियां व अगूंठियां बनायी जाती थी । जिसका उल्लेख बाण ने भी किया है । समुद्र से कोड़ी इकट्ठा कर

छोटे सौदो में मुद्रा के रूप में प्रयोग में लाये जाते थे । ह्वेनसांग ने कौड़ी व मोती को भारत में विनियम के साधन के रूप में प्रयुक्त होते देखा था ।

भारत के घनें जगलों में अनेक प्रकार के वन्य प्राणी भारतीय उद्योगों के विकास के लिए बहुत से कच्चे माल प्रदान करते थे । वाण ने मृग, हाथी दांत, मधुमक्खी, मोर के पंख व कौये के पंख का वर्णन किया है । पशुपक्षियों पर आधारित उद्योग में रेशम एवं ऊन, वस्त्र उद्योग के लिए प्रयुक्त थे । दण्डिन ने शिकारियों को महिष्मती नगर में व्याघ्र चर्म एवं चर्म वस्तुओं के बेचने का वर्णन किया है । ह्वेनसांग ने देखा कि अधिकाशं लोग नंगे पैर रहते थे केवल कुछ ही लोग जूते पहनते थे । कोरिगटन ने अजन्ता को गुफा संख्या 14 में चमड़े के जूते एवं चप्पल का उल्लेख किया है । शिलादित्य के दान में गांव के मोचियों का उल्लेख है । चर्मकारों का समाज में महत्व था जिसका वर्णन राजश्री के विवाह में उनकी सेवा में उपस्थित किये जाने से लगता है। 8 । समान ले जान के लिए चमड़ेकी थैली व बोरों का उपयोग किया जाता था जैसाकि हर्ष के युद्ध अभियान में उनके उल्लेख से ज्ञात होता है । हर्ष चरित्र में हिरणा के चमड़े से ढ़के तलवार के मूठ एवं चित्तक सांप के चमड़े के म्यान का वर्णन मिलता है । हिन्दू साधु अक्सर चमड़े को पहनते थे ।

हाथी दांत उद्योग की देश एवं विदेश दोनो जगह के बहारों में मांग थी । वराहमिहिर के अनुसार हाथी का मूल्य उनसे प्राप्त दांत के वजन के अनुपात में होता था । वन से लाये गये हाथी दांत से हस्तिदन्तकार विभिन्न वस्तुओं को तैयार करते थे । बाण ने कामदेव का हस्तिदन्त छत का वर्णन किया है । हर्ष ने हस्तिदन्त द्वारा एवं बुर्जों का उल्लेख किया है । हाथी दांत का उपयोग पलुंग के लिए सर्वोच्च, इत्यादि पाये गये है । हाथी दातं के आभूषण बहुत लोकप्रिय थे । वाण ने हस्तिदन्त कर्णफूल का दुन्त-पत्र के नाम से उल्लेख किया है हस्तिदन्त के आभूषणों की प्रत्येक समाज बहुत मांग थो ।

भारतीय वस्त्र उद्योग अति विकसित एवं देश विदेश में प्रसिद्ध था । ऋग्वेद काल में बुनाई की कला ज्ञात थी । कौटिल्य ने एक के अध्यक्ष के अधिकार में पृथक बुनाई विभाग की स्थापना का उल्लेख किया है जो सूत, वस्त्र एवं रस्सा इत्यादि जिसके उत्पादन में विधवा, अंपग महिलाऐ, बालिकाऐं एवं वेश्याओं को नियुक्त किया जाए । (9) अमरकोष के अनुसार त्वक, फल, कृमि, रोमाणी इन चार स्रोतों से वस्त्र निर्माण किया जा सकता है । (10) पौधे से पटुआ एवं सन् फल से सूत, कृमि से रेशम एवं रोम से ऊन मिलता हे । ह्वेनसांग ने वस्त्रों में मलमल, सूती, कौशेय, कम्बल इत्यादि का उल्लेख किया है । इस काल में बुनाई अति विकसित कला थी, जिसका परिचय समसामयिक साहित्य में मिलता है ।

वस्त्रों में भारतीय रेशमी वस्त्र विदेशों में बहुत मांग में थे, जिसका उल्लेख पूर्व पर साहित्य डाइजेस्ट आफ यस्टेनियन मे भारत से इसके आयात की चर्चा है । इस काल में भी रेशमी वस्त्रों का भारतीयों के बीच लोकप्रिय एवं यह एक बहुत बड़ा उद्योग था । गोपचन्द्र के मल्लसल्ल ताम्रदान अभिलेख में अर्डस्थानिक नामक अधिकारी का उल्लेख करता है जो आर0के0मुखर्जी के अनुसार रेशम कारखानों का अधीक्षक था । (11)

उष्णाकटिवन्धिय देश होने के कारण भारत में ऊनी वस्त्रों की मांग रेशम एवं सूती वस्त्रों से कम था फिर भी ऊनी वस्त्र उद्योग भी कम नही था । ह्वेनसांग के अनुसार भारत में उत्कृष्ट कोटि की ऊन भेंड़ या बकरी के बाल तथा जंगली जानवरों के ऊन से भी मुलायम आसानी से बुनायी युक्त ऊनी वस्त्र बनाये जाते थे । इत्सिंग ने उल्लेख किया है कि कश्मीर से लेकर मध्य एशिया क्षेत्र तक मंगोल जाति अक्सर ऊनी कपड़े पहनते थे एवं उसका कम्बल भी बनाया जाता था, जो बहुत से कार्यों में प्रयुक्त होता था ।

भारत के सूती वस्त्र प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध थे, एवं प्राचीन विदेशी लेखकों ने कपास के पौधे को आश्चर्यजनक मानकर

इसकी प्रशंसा की है । भारतीय सूती की उत्कृष्टता पर ही बाण ने इसे स्पर्शानुमेय: की संज्ञा दी ।

छठी एवं सातवी शताब्दी के समृद्ध वस्त्र उद्योगों जैसे-सिलाई ,रंगाई,कढ़ाई एवं छपाई इत्यादि के प्रचार-प्रसार में सहायक बना । रंगाई का काम मुख्यत: धोबियों द्वारा किया जाता था । इस काल के मुख्यत: प्रयुक्त रेखाचित्र थे हंसों का जोड़ा,फूलो का रेखांकण । अजन्ता के भित्तिचित्रों में अनेक ज्यामितीय रेखाकण वस्त्रों पर दर्शाये गये है । मूर्तिकला एवं अजन्ता के भित्तिचित्रों से पता चलता है कि वस्त्रों पर अनेक प्रकार की फूलकारी की जाती थी । साहित्यक एवं मूर्तिकला के साश्र्यों से लगता है कि कटे एवं सिले वस्त्र नर एवं नारी दोनो द्वारा पहने जाते थे ।(2)

श्त्रों का उत्पादन भी इस काल में महत्वपूर्ण उद्योग था। यह राजकीय लोगों द्वारा संरक्षित था । वराहमिहिर ने क्षत्रों पर एक सम्पूर्ण अध्याय लिखा है । उनके वर्णन से पता चलता है कि राजा से लेकर साधारण जन सभी छत्र या छाता का प्रयोग करते थे । भास्कर वर्धन ने हर्षवर्द्धन को एक विशाल छत्र प्रदान किया था जो आसाम के शिल्पकारों की दक्षता का परिचय देता है । प्राचीन भारत में महिलाओं द्वारा छत्र प्रयोग करने का प्रचलन था । जैसाकि कादम्बरी में भी उसे स्वर्णमूठ की छत्री लगाये दिखलाया गया है(3)

भारतीय वनों में अनेक प्रकार की लकड़ी की उपलब्धि होने के कारण बढ़ईगिरि व्यवसाय को विशेष प्रोत्साहन मिला । विशाखदत्त ने पाटलिपुत्र नगरी में अनेक काष्ठकारों के होने का उल्लेख किया है, जिन्होने राजभवन एवं नगरद्वार पर भव्यनक्काशी उत्कीर्ण किया था । ह्वेनसांग भारत से अपनी यात्रा की वापसी में अपने साथ चन्दन की दो बड़ी बुद्ध मूर्तियांले गया था । उसने कौशाम्बी में साठ फीट ऊंचे एक मंदिर में बुद्ध के चन्दन की मूर्ति देखी ।झण्डा लगाने के लिए लकड़ी के स्तम्भ लगाये जाते थे ।

पोतनिर्माण भी एक महत्वपूर्ण उद्योग था । भारत के तीन तरफ से समुद्र के घिरे होने के अलावा अनेक विशाल नदियों

द्वारा आवागमन व्यापार एवं युद्ध हेतु पोत निर्माण उद्योग का विकास स्वाभाविक था । हर्षवर्द्धन के एक अभिलेख के अनुसार उसके विजय अभियान में हाथियो व घोड़ो के अलावा पोत भी थे । ह्वेनसांग के अनुसार कामरूप के भास्कर वर्मन के पास 3000 नावों का बेड़ा था । इस काल में पोत निर्माण का मुख्य केन्द्र बंगाल था ।

वेत,बांस,व सरकण्डा इत्यादि से अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुएं बनायी जाती थी । ये सभी भारत में काफी सख्यां में पायी जाती थी । वेत से कुर्सी ,टोकरी एवं चौकी आदि बनायी जाती थी । बांस से छड़ी,वांसुरी,सूप एवं पलंग आदि बनाये जाते थे । सरकण्डे के एक विशाल मंदिर का भी उल्लेख है । इन प्राकृतिक साधनों के अतिरिक्त कृषि साधनों पर भी बहुत से आवश्यक एवं समृद्ध उद्योग आधारित थे । वाण ने लाल एवं सफेद चीनी के व्यापक उद्योग का वर्णन किया है । ﴾14﴿ तेल निष्कासन उद्योग प्रमुख था । वराहमिहिर ने भी तेलियों का उल्लेख किया है ।

मदिरा उद्योग भी इस काल का लाभदायक उद्योग था । वराहमिहिर एवं कत्यायन ने मद्यनिर्माण शालाओं का वर्णन किया है । इस काल में मद्यपान का व्यसन नर एवं नारी दोनों में व्यापक रूप से था । ﴾15﴿मदिरा सोमलता,मदन फल,ईख ,अगूंर व चावल इत्यादि से बनायी जाती थी । इस काल में मदिरा का सेवन व्यापक रूप से विद्यमान था ।

इस काल मे सौन्दर्य प्रसाधन उद्योग भी अर्थकर था, क्योंकि नर एवं नारी दोनों ही इसका उपयोग करते थे । हर्षचरित्र में राजश्री के विवाह के समय सामन्त रानियों को केसर लेई का मुखलेपन आदि का सौन्दर्य प्रसाधन तैयार करने का वर्णन किया है । ﴾16﴿सौन्दर्य प्रसाधन एवं विलेपन तैयार करने के लिए चन्दन लेई,कपूर,केसर इत्यादि का प्रयोग होता था । लाल रंग भी पैर एवं होठ लाल करने के लोकप्रिय सौन्दर्य प्रसाधन थे ।

इत्र उद्योग भी लोकप्रिय था । एवं उसे बनाने के लिए अनेक

विधियां ज्ञात थी । वराहमिहिर सुगन्धित जल, सुगन्धित केशमार्जक, सुगन्धित तेल एवं अगरबत्ती तैयार करने का विस्तृत नुसखा देता है ।

प्राचीन भारतीयों के हर वर्ग एवं लिगं में फूलों के प्रति प्रेम के करण फूलों के आभूषण एवं माला बनाने की कला को संरक्षण मिलता था । इसलिये वात्स्यायन ने इसे चौसठ कलाओं में से एक माना है । (17) कात्यायन के अनुसार राजा को बिना उचित वस्त्र एवं फूलों से सजे बिना राजदरबार में नही जाना चाहिए । बिना फूल आभूषण एवं मालाओं के प्राचीन भारत में कोई भी सौन्दर्य प्रसाधन पूर्ण नही होता था । पुष्प आभूषण लोक-प्रिय होने के करण तात्कालिक साहित्य में इसका विशद् वर्णन मिलता है । ज्ञात होता है कि पुष्पों की माला सिर पर, फूल माला गले में व छोटे फूल कर्णफूल के रूप में प्रयोग किये जाते थे । (18) इस प्रकार हम देखते है कि इस काल में अनेक कलाओं व शिल्प का विकास हुआ । इनके माध्यम से अधिकांश लोग जीविकोपार्जन पा रहे थे । बहुत से उद्योगों की समृद्ध स्थिति थी । देश विदेश में तैयार किये गये वस्तुओं की निरन्तर मांग एक अतिविकसित तकनीकि प्रशिक्षण की व्यवस्था का सकेंत करता है । वृहस्पति के अनुसार जो सोना, चांदी, काष्ठ, प्रस्तर या चर्म का काम कर सकता हो एवं उनके द्वारा बनी वस्तुओं से भलीभांति परिचित हो उसे ही गुणीजन शिल्पी कहते है । उनके अनुसार शिल्पी को न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान होना चाहिए अपितु गुरु के अधीन रहकर व्यवहारिक प्रशिक्षण भी लेना चाहिए । नारद के अनुसार किसी विशेष शिल्प में तकनीकि ज्ञान के इच्छुक को गुरुगृह में शिशिक्ष बनकर ग्रहण करना चाहिए । कात्यायन ने भी शिशिक्ष प्रथा को मान्यता दी है । वाण के अनुसार चन्द्रपीड़ ने गुरुगृह में न सिर्फ सैदान्तिक ज्ञान प्राप्त किया अपितु उत्कीर्णन, कीमती पत्थर के परीक्षण, काष्ठकला, हस्दिन्तकला, स्थापत्य एवं अन्य कलाओं का यांत्रिक कौशल भी प्राप्त किया (19) धन एवं सफलता के लिए तकनीकि ज्ञान आवश्यक था । शिल्पी की स्थिति समाज में बहुत महत्वपूर्ण थी । हर्षचरित्र के अनुसार राज्यश्री

के विवाह में प्रभाकरवर्धन ने अनेक शिल्पीयों को बुलाया था । इस प्रकार विशेष समारोहों में शिल्पीयों का सहयोग एवं उपस्थिति आवश्यक थी । नीलात्मपुराण में कश्मीर के महीमान समाहरोह के वर्णन में शिल्पीयों व उच्च वर्ण के लोगों के बीच उपहारों के आ-दान-प्रदान का वर्णन है । §20§ वस्तुत: इस कारक के कारण अनेक शिल्प एवं व्यवसायों में बहुत प्रगति एवं विकास हुआ ।

1-वाटर्स,भाग 1, पृ0 178 ।
2-बील0,1,पृ0 77 ।
3-वात्सयायन,कामसूत्र,के0एस0गैम्बलर §अनु0§ पृ046 ।
4-एस0के0सरस्वती ,इण्डियन स्कल्पर,चित्र 123 ।
5-ए0एस0आर0,1913-16 ,पृ0 35 ।
6-एस0के0मैत्री,उपरिवत्,पृ0 111 ।
7-हर्षचरित्र ,पृ0139 ।
8-हर्ष0,पृ0 123 ।
9-अर्थशास्त्र,भाग-2,23 ।
10-अमरकोष,कौलब्रुक,पृ0 127 ।
11-ई0आई0,23,पृ0 157 एवं आर0के0मुखर्जी,गुप्ता एम्पायर,पृ0 126
12-हर्ष0,पृ041,261 ।
13-कादम्बरी §काले§,पृ0 255 ।
14-हर्ष0,पृ0136 ।
15-नागानन्द, 3 ।
16-वही,पृ0 111 ।
17-कामसूत्र ।
18-हर्ष0,पृ0 116
19-कादम्बरी,§काले§ ,पृ0 105 ।
20-नीलात्म पुराण,सम्पादक,कांजीलाल,पृ053 ।

उपसंहार

यद्यपि इस अध्ययन के अधिकांश स्त्रोतोंका उपयोग पूर्वोवर्ती इतिहास-कारों ने किया है फिर भी हमने इसे विशिष्ट ढ़ंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तकि हर्षयुगीन आर्थिक अवस्था का स्पष्ट और सम्पूर्ण चित्रण हो सके । इस काल की आर्थिक अवस्था की पुर्नरचना में सहायक स्रोतो यथा पुरातात्विक अभिलख और सिक्के, साहित्य तथा विदेशी वृतांत की सहायता ली गयी है । हर्ष युगीन आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित स्रोतों तथा उसके प्रशासन तन्त्र के प्रतिपादन में विशेष सतर्कता बरती गयी है ।

सर्वेक्षण काल में कृषि की दशा एवं उसके विभिन्न अवयवों का उल्लेख किया गया है । सर्वेक्षण काल में वन सम्पदा, पशुसम्पदा का भी समाज के आर्थिक जीवन में बहुत महत्व था । राजकीय आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत कर था । करारोपण का अधिकार राज्य को स्वत: प्राप्त होता है किन्तु प्राचीन भारत के चिन्तको के अनुसार यह अधिकार शर्तहीन नही है । कोष पर उचित ध्यान दिया जाता था जो राज्य के सभी उधमों का अबलम्ब होता था ।

प्राचीन काल में वाणिज्य व व्यापार का आर्थिक जीवन बहुत योगदान था । वैदिक अनुच्छेदों में पाया जाता है कि लाभ के लिए सुदूर प्रदेशों में व्यापार किया जाता था । भारत अन्तराष्ट्रीय व्यापार का एक मजबूत दूर्ग बन गया था । इनकी जानकारी हमें सर्वेक्षण से प्राप्त होती है । गुप्त काल में वाणिज्य व्यापार सुदृढ़ था । दुर्गम और विपत्ति के होते हुए भी भारतीय व्यापारी व्यापार करते थे, वस्तुओं का आदान प्रदान करते थे तथा अपने देश तथा पड़ौसी देश की जरूरतों को पूरा करते थे ।

भारत की उद्योग व्यवस्था बहुत उच्च कोटि की थी । प्रारम्भ से ही भारत के विशाल प्राकृतिक सम्पदा खनिज, समुद्री, जान्तव एवं वानस्पत्य ने शिल्पियों एंव उद्योगकर्मियों को विभिन्न सर्जनात्मक कलाओं के विकास में समर्थ बनाया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ -सूची

﴾क﴿ मूल स्रोत

1- मूल पाठ तथा अनुवाद

अमर सिंह का अमरकोश :सं0टी0गणपतिशास्त्री,भाग-4, त्रिवेन्द्रम, 1914-1917

अथर्ववेद संहिता :सं0सी0आर0लेनमैन ﴾अनु0﴿ डब्ल्यू0डी व्हिटनी,ह0ओ0सी0,7तथा8, हर्वई यूनिवर्सिटी, 1905

अर्थशास्त्र कौटिल्यकृत :सं0आर0शर्मा शास्त्री,तृतीय संस्करण,मैसूर , 1924 ,

आपस्तम्बधर्मसूत्र :स0जी0बुलर,बम्बई, 1932,जी0बुलर द्वारा आपस्तम्ब,गौतम,वशिष्ठ तथा बौधायन का अनुवाद ,से0बु0ई0 खंड 2 तथा 14 में आक्सफोर्ड, 1879-92,

कामसूत्र,वात्स्यायनकृत :निर्णय सागर प्रेस,बम्बई, 1900,के0 आर0आयंगर द्वारा अंग्रेजी अनुवाद , लाहौर, 1891 ।

नारदस्मृति :सं0जे0जाली,कलकत्ता , 1885,जे जाली का अंग्रेजी अनुवाद ।

कात्यायन-स्मृतिसारोद्धार कात्यायन :सं0पी0वी0काणे,स्मृति आन व्यवहार ला एण्ड प्रासीजर पुर्नगठित मूलपाठ अनुवाद टिप्पणी तथा भूमिका सहित बम0 1963

वृहत्संहिता,वराहमिहिरकृत :सं0एच0कर्ब0, विब्लियोथेका इन्डिका कलकत्ता, 1865,एच0कर्न,अंग्रेजी अनुवाद ज0रा0ए0सो0 1870-73 ।

हर्षचरित्र,वाणाकृत :सं0के0पी0धरव तथा वासुदेव लक्ष्मण

शास्त्री पन्सिकार, निर्णयसागर, प्रेस बम्बई, 1927 ।

2-भारतीयेत्तर स्रोत

गाइल्स, एस0ए0, द ट्रेवेल्स आफ फ-हियन और रिकाड आफ बुद्धिस्टिम किंग्ड्मस, केम्ब्रिज, 1923 ।
बील0एस0सि-यु-कि बुद्धिस्ट रिकार्ड्स आफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, ह्वेनसांग की मूल चीनी भाषा से अनु0, दो खंड, 1906 ।

बाट्टर्न, टी0, आन यूआन-च्वांग्स ट्रेवेल इन इण्ड्या {सं0} टी0डब्ल्यू0 बुशेल, दो खंड, लंदन, 1904, 1905 ।

(ख) आधुनिक ग्रन्थ

अग्रवाल, वा०श०, हर्षचरित्र :एक सांस्कृतिक अध्ययन (हिन्दी) पटना 1953 ।
इन्डिया एज नोन टू पाणिनि लखनऊ, 1953 ।
द राष्ट्र कूटाज एंड देअर टाइम्स, पूना, 1934 ।
स्मिथ, वी०ए०, अर्ली हिस्ट्री आफ इन्डिया, चतुर्थ संस्करण, आक्सफोर्ड 1924 ।
रायचौधरी, एच०सी०पालिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शियेन्ट इण्डिया, छठा संस्करण, कलकत्ता, 1953 ।
शर्मा, रामशरण, सम इकानामिक आस्पेक्ट्स आफ द कास्ट सिस्टम इन एन्शियेन्ट इण्डिया, पटना, 1952 ।
मजुमदार, आर०सी०, कारपोरेट लाइफ इन एन्शियेन्ट इंडिया, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1922 ।
घोषाल यू०एन०, एग्रेरियन सिस्टम इन एन्शिऐन्ट इंडिया कलकत्ता 1930 ।
भंडारकर, डी०आर०वण्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन, 1954 ।
मजुमदार और अल्तेरकर, वाकाटक गुप्त एज, बनारस, 1954 ।

(ग) पत्रिकाएं स्मृति-ग्रन्थ

आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबिली वाल्यूम्स, 3, खंड-3 भाग, कलकत्ता, 1922-28 ।
इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली, कलकत्ता ।
आर्कलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट्स ।
के0वी0रंगास्वामी आयंगर स्मृति ग्रन्थ, 1940 ।
जर्नल आफ ओरियन्टल रिसर्च, मद्रास ।
जर्नल आफ द यूनिवर्सिटी आफ बम्बे, बम्बई ।
डी0आर भंडारकर, वाल्यूम, कलकत्ता, 1940 ।